शमशेर की कविता
रमण सिन्हा
...अवबोध का उससे कुछ भी लेना-देना नहीं है जिसे हम अन्य तरीकों से जानते हैं--- संसार के बारे में,उद्दीपक के बारे में, जिसका वर्णन भौतिक-विज्ञान करता है या इन्द्रियों के बारे में, जिसका जीव-विज्ञान वर्णन करता है।यह प्रथमतया स्वयं को संसार की एक ऐसी घटना के रूप में प्रस्तुत नहीं करता जहाँ कार्य-कारण का नियम लागू किया जा सके बल्कि हर पल वह संसार की पुनर्रचना या पुनर्गठन के रूप में प्रस्तुत होता है ।
मारिस मार्लो-पोंती[1]

वालेस स्टीवेंस ने अपने एक प्रसिद्ध लेख में चित्रकार लियो स्टेन के एक प्रयोग का उल्लेख किया है। चित्रकार का अनुस्मरण है: “मैंने मेज पर...एक मृद्भांड रखा...और इसे हर दिन कुछ घड़ी या कुछ घंटे देखना शुरू किया। मेरी मंशा इसे एक चित्र की तरह देखने की थी और मैं इसकी प्रतीक्षा करने लगा। समय पर यह घटित हुआ। लेकिन यह परिवर्तन आकस्मिक रूप से घटित हुआ जब एक वस्तु के रूप में वह मृद्भांड...उसका आकार-विशेष, रंग-विशेष एक रचना में बदल चुका था। मृद्भांड का उकेरा गया चित्र एवं अन्य तत्व अनुपस्थित होकर उस बड़ी रचना का हिस्सा बन चुके थे, जो कि सम्पूर्णता में वह मृद्भांड था। यह मेरे लिए चित्रात्मक ढंग से देखने की शुरुआत थी।

“इस शुरूआत को हमने चारों दिशाओं में फैलाना शुरू किया। मैं हर चीज को एक रचना के रूप में देख पाने लायक बनाना चाहता था और मुझे लगा यह मुमकिन है।”[2]

शमशेर ने मलयज से एक बातचीत के दौरान कहा था: “मेरी चेतना इतनी कह लो कि कंडीशंड हो चुकी है, कि हर चीज में मुझे एक अंत:सौंदर्य दिखाई देता है, बिना किसी अतिरिक्त कांशस प्रयत्न के, सौंदर्य का पूरा एक कम्पोजीशन...दृश्य जगत पहले मेरी नजर में सौंदर्य के एक कम्पोजीशन के रूप में ही आता है... ”[3]

जो लियो स्टेन के लिए प्रयत्नसाध्य था, शमशेर के लिए वह सहज उपलभ्य है। शमशेर अपनी प्रकृति से ही चित्रकार थे और उनके लिए यह निर्णय लेना आसान नहीं रहा कि वे कवि बनें या चित्रकार। उन्होंने स्वयं लिखा है: “बचपन से मुझे शौक था चित्रकारी का। एक मर्तबा ये इतिहास की पुस्तक में जो तस्वीरें बनी हुई थीं - छोटी-छोटी रजिया बेगम की है, अलाउद्दीन की है, या अकबर की है, या शाहजहाँ की है, उसको हू-ब-हू मैं उसी तरह से उतार लेता था। फ्री-हैंड। मेरा मामा आर्टिस्ट थे, वो एक चित्र खींच रहे थे- सामने का दृश्य। वो किसी काम से नीचे गये, मैंने एक कागज लिया और उसी तरह का चित्र बना दिया। कुछ देर तक वह समझ न सके कि कौन सा उनका है। तो यह शौक मुझे था और आप यकीन मानिए कि मैं यह फैसला नहीं कर सका मुद्दतों तक और आज भी मेरे मन में यह सवाल उठता आया है कि मैं साहित्य में रहूँ, साहित्य-रचना ही करूं, कविता ही लिखूं या चित्र बनाऊं, चित्रकार हो

जाऊं।"[4] शमशेर के इस अनिर्णय का, उनके अवबोध पर एक गहरा असर लक्षित किया जा सकता है।

सन् 1934 से 37 तक शमशेर ने उकील बंधुओं से दिल्ली एवं देहरादून में चित्रकला का प्रशिक्षण प्राप्त किया। शारदाचरण उकील अवनीन्द्रनाथ ठाकुर के शिष्य थे अतः स्पष्ट था कि उनके प्रशिक्षण का आधार बंगाल स्कूल की मान्यताओं के अनुरूप होता। शमशेर के आरम्भिक कुछ चित्रों पर बंगाल स्कूल का वैसा ही प्रभाव है जैसा कि उनकी आरम्भिक कुछ कविताओं पर छायावाद का है। *नाक-नक्श, सुकेशिनी, उधारपन* जैसे चित्र एवं सजल स्नेह का भूषण केवल (34) सहन-सहन बहता है वायु (32) कवि कला का फूल हूँ मैं (37) जैसी कविताएँ समान अवबोध की उपज है। शमशेर इस दौर में सुमित्रानंदन पंत से प्रभावित थे और पंत या पूरा छायावाद एक स्तर पर रवीन्द्रनाथ ठाकुर से प्रभावित था। यहाँ यह उल्लेख करना प्रासंगिक होगा कि प्रख्यात समाजशास्त्री **धूर्जटि प्रसाद मुखर्जी** ने बंगाल स्कूल के चित्रों को रवीन्द्रनाथ ठाकुर की रचनाओं का रूपंकर प्रतिरूप कहा था।[5]

शमशेर उकील बंधुओं के यहाँ **ओकाकुरा** के *'छह सिद्धांत'* तथा **से हो** के *'छह नियम'* से ऊबकर बहुत जल्द ही प्रभाववाद और अतियथार्थ के संसार में सांस लेने लगते हैं।[6] आश्चर्य नहीं कि यही वह समय है जब शमशेर की कविता का रूप (फोर्म) कुछ बदला हुआ नजर आने लगता है।*फिर भी क्यों* (38)का तेवर और उसका रूप देखिए ---यहाँ नायिका को ऐसे ताल के रूप में देखा गया है कि जिसके सीने पर ठहर कर शाम उसके अन्दर --- अपना अँधियारा, साँसों का कमरा,पहचानी सी धड़कन का सुख ही नहीं बल्कि जीवन की आने वाली भूल को भी देख लेती है! कविता का यह रूप कवि के परिवर्तित--- प्रभाववादी अवबोध का परिचायक है। प्रभाववादी अवबोध को संक्षेप में समझने के लिए मार्सेल प्रूस्त के *रिमेम्ब्रेंस आफ थिंग्स पास्ट* से एक उद्धरण लिया जा सकता है। इस उपन्यास (या उपन्यास श्रृंखला) में एलस्तीर एक प्रभाववादी चित्रकार है, जिसके चित्रकला के बारे में एक स्थल पर उपन्यास का कथावाचक (नेरेटर) एम. लिखता है, जिन नामों से हम वस्तुओं को जानते हैं वे एक निश्चित धारणा से बंधी होती हैं, जो हमारी जीवित छापों के लिए अजनबी सी होती हैं। लेकिन वे निश्चित धारणाएँ हमें बाध्य करती हैं कि

हम अपनी सजीव छापों में से हर उस चीज को निकाल दें जो उस धारणा में नहीं अंटता। बालबेक के होटल में कई बार ऐसा होता था कि सुबह जब क्रांसुआवा खिड़की से पर्दे हटाती या शाम को जब मैं सेन-लू के साथ कहीं घूमने जाने के लिए खिड़की के पास खड़ा उसका इंतजार कर रहा होता तो प्रकाश के विशेष प्रभाव के कारण सागर का अंधकार में डूबता भाग मुझे दूरवर्ती तट प्रतीत होता, या फिर मैं क्षितिज पार फैली थिरकती हुई नीली पट्टी को हर्ष विभोर हो एकटक देखता जाता और निश्चय न कर पाता कि वह सागर का अंश है या आकाश का। शीघ्र ही मेरी बुद्धि सागर और आकाश के बीच वह भेद पुनः स्थापित कर देती जो मेरे प्रत्यक्ष बोध में मिट गया था।.... वे विरले क्षण, जिनमें हम प्रकृति को वैसे देखते हैं जैसी कि वह काव्यात्मक हैं- ऐसे क्षणों का ही एलस्तीर की रचनाओं में आभास होता था।.... एलस्तीर की चेष्टा यह होती थी कि वस्तुओं का जो रूप उसकी चेतना में बना हुआ है उस रूप में उन्हें चित्रित न करे बल्कि उन्हें हमारे दृष्टिबोध के अनुरूप चित्रित करे। यथार्थ के सम्मुख एलस्तीर अपनी तर्कबुद्धि की सभी धारणाओं से मुक्त होने का प्रयत्न करता था, तूलिका संभालने से पहले वह जानबूझकर पूरी तरह अनजान, अबोध और नादान बन जाता था।[7]

प्रभाववादी आंदोलन के नेता क्लाद मोने भी कहते थे कि अगर वे जन्मतः अंधे होते व उनको अचानक दृष्टि प्राप्त होती तो कितना अच्छा होता। तब वे वस्तुओं के बारे में जरा सा भी पूर्वज्ञान न होने के कारण उसे विशुद्ध रूप से चित्रित कर सकते।[8]

शमशेर बहादुर सिंह ने दूसरा सप्तक के वक्तव्य में अपनी इच्छा व्यक्त की थी कि हर भावना की जो एक अपनी भाषा होती है जिससे वह कलाकार से बातें करती है, उसी को सीखूं। अपनी एक कविता में वे कहते हैं:

वहाँ सचमुच
किसी कैमरे को यकीन न आएगा
वहाँ सब कुछ सब कुछ निरावरण है
जो जो कुछ है वही है।

(गोया वो.....)

यह वही दृष्टिबोध है जिसकी वकालत प्रभाववादी चित्रकार करते रहे हैं: जो जो कुछ है वही हैः यानी किसी भी पूर्वग्रह से रहित शुद्ध अवबोध। प्रभाववादी चित्रकारों ने अपने घोषणा पत्र में लिखा थाः अगर हम लोग अपनी आंख पर भरोसा करें, इस बात पर नहीं कि इस वस्तु के बारे में हमारी पूर्वधारणा क्या है और हमारे कला-आचार्यों के अनुसार इसे कैसा दिखना चाहिए तो हम लोग बड़ी ही उत्तेजक खोज कर सकते हैं।[9]

प्रभाववादी चित्रकार अपने से पहले के चित्रों को अवास्तविक मानते थे क्योंकि उनके अनुसार वे चित्र *क्रमबद्ध दृष्टि* के परिणाम थे। क्रमबद्ध दृष्टि यानी चीजों को क्रम से देखना-नख से शिख तक। प्रभाववादी चित्रकार इसे देखने की एक गलत अवधारणा पर टिकी हुई रूढ़िबद्ध एवं पूर्वाग्रहपूर्ण दृष्टि मानते थे। इनके अनुसार क्योंकि जब हम किसी वस्तु को देखते हैं तो उसके सभी अंगों-उपांगों को अलग-अलग नहीं देखते हैं बल्कि हमारे नेत्रपटल पर उसकी संपूर्णता का ही एक आभासीय चित्र अंकित होता है। दृष्टिजन्य यथार्थवाद का नारा देते हुए चित्रकार गोया का कहना था किः मैं व्यक्ति के सिर के बालों को नहीं गिन सकता न उसके कोट के बटनों को। मुझे जो दिखाई नहीं देता वह देखने का मेरी कूची को कोई अधिकार नहीं।[10] इसे प्रभाववादी चित्रकार *समपात दृष्टि* कहते थे।

काव्य के धरातल पर इस समपात दृष्टि की स्वाभाविक परिणति हुईः कविता का बिम्ब में तब्दील हो जाना, क्योंकि बिम्ब का भी मुख्य जोर संश्लेषण पर होता है न कि विश्लेषण पर। एक दूसरे स्तर पर कविताएँ अमूर्त भी हो गईं, क्योंकि प्रभाववादी अवबोध चीजों को अजनबी आंखों से देखती है। वस्तुओं का जिन नामों से, जिन धारणाओं से संज्ञापन होता है उसको तिलांजलि देने का एक नतीजा यह हुआ कि कविता में शब्द भी अपने परिभाषाबद्ध एवं आनुषंगिक अर्थ से मुक्त हो गये। अब शब्द किसी वस्तु को जानने का पारम्परिक संकेत चिन्ह् नहीं रहा बल्कि स्वयं एक अनुभव में तब्दील हो गया। अपनी एक कविता में शमशेर कहते हैं:

उसने मुझसे पूछा, तुम्हारी कविताओं का क्या मतलब है?

मैंने कहा, कुछ नहीं।

उसने मुझसे पूछा, इन शब्दों का क्या

मतलब है? मैंने कहाः शब्द

कहाँ है?

(राग)

अपनी कविताओं के बारे में एक जगह शमशेर ने लिखा है: इन खाकों में कुछ है जो महज इशारे हैं जिनमें व्यंजना की परोक्षता ही केवल व्यक्त हुई है। जैसे रेखागणित की शक्लें होती हैं। उनका शाब्दिक अर्थ कुछ नहीं है।[11]

कविता में शाब्दिक अर्थ की अनुपस्थिति की मुख्य वजह वही प्रभाववादी अवबोध है जिसे खुद शमशेर ने यू स्वीकार किया है--- मैंने चीजों को अक्सर पेटिंग की शक्ल में ग्रहण किया है, भले ही उनका कोई बाह्य रूपाकार न हो, रंग न हो, पर रंगों के प्रभाव उनमें हैं- रंगों के भावात्मक रूप। मेरी कविताओं में जो इम्प्रेशनिज्म की बात कही गयी है वह यही है- मैंने मन पर पड़ने वाले प्रथम प्रभाव को ज्यों का त्यों यत्नपूर्वक शब्दों में ट्रांसफर करने की कोशिश की है।[12]

शमशेर की कविताओं में जो बिम्ब है, जो अमूर्तन है वह कवि के इसी प्रभाववादी अवबोध की वजह से ही हैं। इस कविता को देखें:

शाम का बहता हुआ दरिया कहाँ ठहरा।

सांवली पलकें नशीली नींद में जैसे झुकें

चांदनी से भरी भारी बदलियाँ हैं

ख्वाब में गीत पेंग लेते हैं

प्रेम की गुइयाँ डुलाती हैं उन्हें:

उस तरह का गीत, वैसी नींद वैसी शाम- सा है

वह सलोना जिस्म।

(वह सलोना जिस्म)

इस कविता में *वह सलोना जिस्म* का जो बिम्ब उभरता है वह पाठक की संवेदना के धरातल पर यूं घटित होता है जैसे कोई प्रभाववादी चित्र दर्शक के नेत्रपटल पर उतर आया हो। बावजूद इसके कि *गीत नींद और शाम* के साथ

जिस्म का कोई चाक्षुष स्तर पर पूर्व निर्धारित अनुषंग नहीं है, जिस्म का बहुत ही ऐन्द्रिय प्रभाव पाठक की संवेदना पर पड़ता है। गीत नींद और शाम जैसे अमूर्त भावों के सहारे जिस्म की मूर्तता को उभार सकना वस्तुतः उस प्रभाववादी कौशल का नतीजा है जो वस्तुगत सैद्धांतिक ज्ञान के बजाय सीधे चाक्षुष अनुभूतियों पर ज्यादा जोर देती है.... पूरे चित्र देने के बदले उस जमीन का चित्रण करती है जिस पर उस अनुभूति का निर्माण हुआ था।[13] इसलिए कवि जिस्म के सलोनेपन को उभारने के लिए जिस्म का कोई चित्र नहीं बनाता बल्कि सलोनेपन के तत्वों को उभार सकने वाले ऐन्द्रिय अनुभवों की जमीन का बिम्ब निर्मित करता है-वैसा गीत, वैसी शाम, वैसी नींद के सहारे। कविता की संरचना में ये बिम्ब इस प्रकार रखे गये हैं कि पाठक के मन में वह खास संवेग उत्पन्न होता है जिसे इलियट संरचनागत संवेग कहते थे क्योंकि ऐसी कविताओं में रोमैंटिक कविताओं की तरह पूर्वनिर्धारित संवेगों को पाठ में ऊपर से थोपा नहीं जाता था बल्कि ये संवेग खुद पाठ से उसकी संरचना से निःसृत होते हैं।[14] अतीत-मोह पर निराला की *यमुना के प्रति* और पंत की *स्वप्न* कविता के सामने शमशेर की *लौट आ ओ धार* कविता को रखकर देखें तो रोमैंटिक कविता और आधुनिक कविता का फर्क स्पष्ट हो जाएगा। रोमैंटिक काव्य-भाषा को एजरा पाउंड **भावुक फिसलन**[15] कहते थे और इससे बचने के लिए संरचनागत संवेग एक कारगर उपाय था। लेकिन यह लम्बी कविताओं के लिए उतना कारगर नहीं था जितना कि छोटी कविताओं के लिए। यही वजह है कि पाउन्ड ने अपनी पुस्तक ए.बी.सी.आफ रीडिंग में चित्राक्षर विधि की अवधारणा प्रस्तुत की जो बिम्ब की अवधारणा को और अधिक विकसित करती है। चित्राक्षर विधि की अवधारणा मूलतः अर्नेस्ट फेनोलेसा की थी लेकिन जो अपने प्रसिद्ध लेख *ऐसे आन द चायनीज रिटन करेक्टर* को प्रकाशित करने के पहले ही दिवंगत हो गये। 1913 में जब फेनोलेसा की विधवा ने पाउंड को अपना साहित्यिक सलाहकार बनाया तब पहली बार पाउंड को फेनोलेसा की पांडुलिपि देखते हुए यह महसूस किया कि इससे बिम्ब की अवधारणा को और विकसित किया जा सकता है। ए.बी.सी आफ रीडिंग में पाउन्ड ने लिखाः चीनी चित्राक्षर ध्वनि का चित्र होने की कोशिश नहीं करती है न ध्वनि संकेतित कोई लिखित चिन्ह् बनने की कोशिश करती है बल्कि यह अब भी एक वस्तु की तस्वीर है- कई वस्तुओं की दी हुई

स्थितियाँ, संदर्भ या समुच्चय की ही तस्वीर है।[16]आगे उन्होंने लिखा है कि अगर किसी चीनी को लाल रंग अभिव्यक्त करना हो तो वह कुछ ऐसे चीजों का संक्षिप्त चित्र बनाएगा जिसमें लाल रंग सामान्य हो-जैसे गुलाब, चेरी या ऐसी ही कुछ और दो-तीन चीजें। यह काम बहुत कुछ ऐसा है जैसे एक सामान्य वक्तव्य प्रतिपादित करने के लिए कोई वैज्ञानिक हजारों स्लाइडों में कुछ ऐसे स्लाइडों को चुनता है जो उसके पक्ष को सिद्ध करने के अलावा सभी पक्ष के लिए सभी सामान्य ठहरे। यह विधि फेनोलेसा और पाउंड को वैज्ञानिक और काव्यात्मक दोनों लगती थी, क्योंकि एक तो यह दार्शनिक अमूर्तताओं को नष्ट करता था तथा दूसरे यह व्यक्तिगत उदाहरणों को तरजीह देने वाला था। इस विधि से पाउंड ने अपने बिम्ब की अवधारणा को विकसित एवं परिवर्द्धित किया। पहले जहाँ एक बिंब एक ही पंक्ति में खत्म हो जाती थी अब इस विधि से संभव था कि लंबी कविताएँ भी बिम्बवादी अवधारणा से लिखी जा सकें। खुद पाउंड ने अपने कैंटो में इसका सफल प्रयोग किया।

शमशेर पाउंड के चित्राक्षर विधि की अवधारणा से परिचित थे और उन्होंने फेनोलेसा के इस प्रसिद्ध लेख को न सिर्फ पढ़ा था बल्कि वह उससे प्रभावित भी हुए थे।[17] अपनी अधिकांश लंबी कविताओं में शमशेर इसका प्रयोग करते हैं। उदाहरण के लिए टूटी हुई बिखरी हुई कविता में नैरेटिव का इस्तेमाल तो हुआ है लेकिन बिम्बों के द्वारा, बिंब मालाओं के द्वारा यहाँ कवित काव्य-नायक के प्रेमोच्छवास का कथावाचक नहीं है। (प्रसाद के आंसू या कोई भी आम छायावादी प्रेम-कविता याद करें) बल्कि वह उन एकांतिक अनुभूतियों को आकर्षक बिंबों में प्रस्तुत करता है जिसे सामान्यतः प्रेम कहा जाता है *वह मुझ पर हंस रही है* से लेकर......*आह तुम्हारे दांत से जो दूब के तिनके की नोक* तक कविता में कई बिंब नियोजित हैं, जहाँ प्रेमानुभव को कई संदर्भों, कई स्थितियों में आकार ग्रहण करते देखा जा सकता है।

शमशेर की अधिकांश कविताओं में बिंब काव्य-संरचना में अन्तर्गथित नहीं हैं, किसी आवयविक इकाई का निर्माण नहीं करती है। इसलिए काव्य-संरचना काफी विखंडित दिखाई पड़ती है।तीस के दशक में यथार्थवाद बनाम आधुनिकतावाद का जो चर्चित विवाद जर्मनी में प्रारम्भ हुआ था उसमें लुकाच के आवयविक सिद्धांत के विपक्ष में ब्लाक, ब्रेख्त एवं एडोनों का यही कहना था

कि आवयविक संरचना वाली रचनाएँ हमारे समय में समाज के अन्तर्विरोधों को उजागर करने के बजाय यथार्थ के अखण्ड एवं संपूर्ण होने का भ्रम खड़ा करती हैः चाहे उस रचना की अन्तर्वस्तु ठीक इसके विपरीत बात कहती हो, ऐसी रचनाएँ यथास्थिति को तोड़ने के बजाय अन्ततः उसे सिद्ध ही करती हैं।[18]

शमशेर की कविताओं की संरचना *टूटी हुई बिखरी हुई* है जो काव्य के परम्परिक अधिग्रहण की प्रणाली को चुनौती देती है।हिन्दी की पारंपरिक कविता की संरचना से शमशेर की काव्य-संरचना इतनी भिन्न है कि पाठक को पहली बार पढ़ते हुए एक झटका सा लगता है। इस झटके में ही संभवतः काव्य का वह रहस्य छिपा हुआ है जिसे आचार्य कुन्तक ने *वक्रोक्ति*[19] के नाम से तथा रूसी रूपवादियों ने *अपरिचितीकरण*[20] के नाम से पहचानने का प्रयास किया था।

शमशेर की कविताओं को पढ़ते हुए पाठक को ऐसा महसूस होता है कि जैसे उसकी चेतना का कायाकल्प हो रहा है। यह नहीं कि सिर्फ उसके सामने एक बिल्कुल नया और अनदेखा संसार भासमान हो रहा है बल्कि यह महसूस करने के, उसके पास जो संवेदनातंत्र हैं वह भी जैसे बदल रहा है- ज्यादा संवेदनशील, ज्यादा आलोचनात्मक, ज्यादा तीक्ष्ण हो रहा है।

अतियथार्थवाद का आंदोलन (1919---39) कविता में पहले आया था चित्रकला में उसके बाद आया। इसी प्रकार शमशेर की घोषित अतियथार्थवादी कवित 'सींग और नाखून' तथा 'शिला का खून पीती थी' सन् 42 में लिखी गयी जबकि उनके चित्र-संसार में 'पागल कलाकार' (49) 'विक्षिप्त कवि' (49) 'एक सुर्रियलिस्ट चेहरा' (59) 'पिंजड़े के अंदर तोता रानी' (59) 'रक्षक और तोता' (50) 'बंदीगृह में एक जोड़ा गोरे वक्ष' (50--51) जैसी अतियथार्थवादी कृतियों का प्रवेश 49---51 के समय में हुआ। शमशेर अतियथार्थवादी कृतियों से परिचित एवं प्रभावित थे, विशेषकर पाल एलुआ (1895--1952) एवं लुई अरागां (1887---1982) की रचनाओं से। इन्होंने न सिर्फ लुई अरागां पर एक प्रदीर्घ निबंध 'लुई अरागां: नये योरोपियन साहित्य का एक व्यक्तित्व'[21]लिखा, बल्कि उनकी कुछ कविताओं का अनुवाद भी किया।

अतियथार्थवाद का उद्देश्य जैसा कि मैक्स अर्नस्ट के हवाले से हर्बट रीड ने लिखा है, "अचेतन में प्रवेश कर उसकी अन्तर्वस्तु को यथार्थवादी तरीके से ब्यौरेवार चित्रण करना नहीं है और न अचेतन से बहुत सारी सामग्री लेकर एक अलग फैंसी दुनिया का निमार्ण करना है बल्कि उनका उद्देश्य चेतन और अचेतन के बीच शारीरिक एवं मानसिक दीवारों को तोड़कर, बाह्य एवं आंतरिक दुनिया जैसे विभाजन को ध्वस्त कर, ऐसे अतियथार्थ का निर्माण करना है; जहाँ यथार्थ और अयथार्थ, ध्यान एवं क्रिया एकरूप होकर संपूर्ण जीवन को आच्छादित कर ले।"[22]

अतियथार्थवादी कलाकार यथार्थ को कला के लिए नाकाफी मानते थे। फ्रायड से संकेत ग्रहण करते हुए वे अचेतन को मनुष्य की आत्मा के इतिहास एवं भूगोल का ज्यादा प्रामाणिक कोश मानते थे। उनके अनुसार कोई भी प्रामाणिक बिंब अचेतन में ही धारण किया जा सकता है, क्योंकि यहीं एक दूसरे से बहुत दूर बिछुड़ गयी दुनियाएँ जुड़ जाती हैं और बिम्ब भावोत्तेजक शक्ति प्राप्त करते हैं।[23] यही कारण है कि आन्द्रे ब्रेतां ने दो वस्तुओं की अधिक से अधिक विपरीत एवं दूरस्थ वस्तुओं से तुलना एवं उसकी उत्तेजक एवं विस्मयकारी संयोजन को ही सर्वोत्तम कविता का आधार माना था।[24] इस संदर्भ में ब्रेतां की यह कविता उदाहरण है: "एक स्थितप्रज्ञ तितली / उतरती है किसी गुलाबी नक्षत्र पर / जिससे खुल जाता है एक गवाक्ष नर्क मे, / एक निर्वस्त्र स्त्री के सम्मुख खड़ा रहता है शाश्वत एक नकाबपोश पुरुष... "[25]

साल्वोदार दाली के उन चित्रों को ही अतियथार्थवादी कला का प्रतिनिधि नमूना माना गया जिसमें आपरेशन टेबुल पर सिलाई मशीन एवं छतरी, पियानो पर गधे का कंकाल तथा निर्वस्त्र नारी-देह में दराजों की तरह खुलने वाली छाती दर्शाया गया है।

शमशेर की कई ऐसी कविताएँ एवं चित्र हैं जिसे अतियथार्थवाद की इस पृष्ठभूमि के बगैर नहीं समझा जा सकता। *रक्षक और तोता* तथा *बंदीगृह में एक जोड़ा गोरे वक्ष* का बिम्ब अचेतन की ही सृष्टि है। कविताओं में *सींग और नाखून* तथा *शिला का खून पीती थी वह जड़* के अलावा *मकई से वे लाल गेहुँए तलवे, योग, एक आदर्श / लहरों के पार, असंभव, सूर्यास्त, टूटी हुई, बिखरी* हुई जैसी रचनाओं के कई बिम्ब अतियथार्थवादी अवबोध की उपज

हैं। द्रष्टव्य हैं कुछ बिम्ब:

सीने में सुराख हड्डी का।
आंखों में: घास काई की नमी

(सींग और नाखून)

सीढ़ियाँ थीं बादलों की झूलती
टहनियों सी।

(शिला का खून पीती थी)

नदियों में अनुभव का ताप खिला हुआ है
उस पर मुर्दों की छाया-सी
कोई चील उतर रही है

(एक आदर्श/लहरों के पार)

सूर्य मेरी अस्थियों के मौन में डूबा
गुट्ठल जड़े
प्रस्तरों में सघन पंजर में
मुड़ गयी।

(सूर्यास्त)

मकई-से वे लाल गेहुँए तलवे
मालिश से चिकने हैं।...
सूखी भूरी झाड़ियों में व्यस्त
चलती-फिरती पिंडलियाँ।
(मोटी डालें, जांघों से न अड़ें!)

(मकई से वे लाल गेहुँए तलवे)

सूर्य मेरी पुतलियों में स्नान करता

केश-वन में झिलमिलाकर डूब जाता
स्वप्न-सा निस्तेज गतचेतन कुमार।

(योग)

कठिन प्रस्तर में अगिन सूराख
मौन पर्तों में हिला मैं कीट।

(कठिन प्रस्तर में)

लिंग; मानस। लिंग; अर्वाचीन।
लिंग; शिव; भविष्य।
योनि मात्र शून्य, सदैव-सदैव।

(कथा-मूल)

दोपहर बाद की धूप छांव में खड़ी इंतजार की ठेलेगाड़ियाँ
जैसे मेरी पसलियाँ....
खाली बोरे सूजों से रफू किये जा रहे हैं....जो
मेरी आंखों का सूनापन है

(टूटी हुई, बिखरी हुई)

इन बिम्बों का उद्देश्य हर्बट रीड के पद में कहें तो वही **विस्मय का पुनर्जागरण**[26] है जिसे उन्होंने अतियथार्थवाद के संदर्भ में घोषित किया था।

लेकिन यही वह दौर (1940) है जब शमशेर ने सबसे ज्यादा वैसी कविताएँ लिखीं जिसे व्यापक अर्थ में सामाजिक और संकुचित अर्थ में राजनैतिक कहा जाता है। फिर एक हिलोर उठी (40) लेकर सीधा नारा (41) जीवन की कमान (41) दुख नहीं मिटा (43) अकाल (43) य शाम है (43) कुछ मुक्तक (भाव थे जो शक्ति-साधन के लिए) (43) शाम होने को हुई (45) बात बोलेगी (45) वाम वाम वाम (45) माई (45) बम्बई में वर्ली के 60 किसानों को देखकर (46) कश्मीर (46) शशि बकाया की याद में (46) हैवां ही सही (46) धर्म और मजहब वाले (47) हम नये इतिहास का पहला वरक हैं खुला

(47) राजनीतिक करवटें (48) निजामशाही (48) शहीद कामरेड नगेन्द्र सकलानी के प्रति (49) जैसी रचनाएँ इसी दौर की हैं। इन कविताओं पर प्रगतिवाद का स्पष्ट प्रभाव है। कवि का आह्वान है:

फिर वह एक हिलोर उठी--

गाओ!

वह मजदूर किसानों के स्वर कठिन हठी!

कवि हे, उनमें अपना हृदय मिलाओ!

उनके मिट्टी के तन में है अधिक आग,

है अधिक ताप:

उसमें कवि हे

अपने विरह-मिलन के पाप जलाओ!

काट बूर्जुआ भावों की गुमठी को--

गाओ!

(फिर एक हिलोर उठी)

दूसरा सप्तक में शमशेर का वक्तव्य है: "सुन्दरता का अवतार हमारे सामने पल-छिन होता रहता है। अब यह हम पर है,खासतौर से कवियों पर, कि हम अपने सामने और चारों ओर की इस अनन्त और अपार लीला को कितना अपने अन्दर घुला सकते हैं।

"इसका सीधा-सादा मतलब हुआ अपने चारों तरफ की जिंदगी में दिलचस्पी लेना, उसकी ठीक-ठीक यानी वैज्ञानिक आधार पर (मेरे नजदीक यह वैज्ञानिक आधार मार्क्सवाद है) समझना और अनुभूति और अपने अनुभव को इसी समझ और जानकारी से सुलझाकर, स्पष्ट करके, पुष्ट करके अपनी कला-भावना को जगाना। यह आधार इस युग के हर सच्चे और ईमानदार कलाकार के लिए बेहद जरूरी है।" [27]

शैली के संबंध में कुछ बातें अपने दिल में याद रखने के लिए, सन् 1945 की डायरी में शमशेर ने नोट की थी: " (1) कोई समास न हो। (2) जिसको समझ लें, एकदम, आसानी से, आंख पड़ते ही। (3) जो पढ़कर भुलाया न जा सके। (4) जिसे कोई भी पढ़े बगैर न रहे। (5) जो एक बार पढ़ने पर ही याद हो जाए। (6) जिसको पढ़कर कहें, कि बात सोलहों आने खरी हैं। (7) जो हर बार पढ़ने पर ताजा लगे। (8) जो एक अपढ़ तक भी पहुँच जाए जल्दी। (9) जो विदेशियों को भी झुमा दे। (10) जो समय को आगे बढ़ाए यानी आदमी को बड़ा भी बनाए - चाहे जिस तरह। (11) जिसको बार-बार पढ़ने- याद करने की हर आदमी की इच्छा हो।"[28]

स्पष्ट ही ऊपर के उद्धरणों में शमशेर का आग्रह *यथार्थवाद* पर या कहें *समाजवादी यथार्थवाद* पर है - भावबोध एवं शिल्प दोनों ही दृष्टियों से। शमशेर की छह दशक (1932-92) की काव्य-यात्रा में करीब साढ़े तीन सौ कविताएँ प्रकाशित हुई हैं जिसमें आधी करीब इसी आदर्श पर रची गयी हैं, इसके बावजूद आलोचकों ने कभी इन कविताओं को शमशेर का असली रंग नहीं माना ।यही नहीं बल्कि आलोचकों का तो यहाँ तक कहना है कि वक्तव्य उन्होंने सारे प्रगतिवाद के पक्ष में दिए, कविताएँ उन्होंने बराबर वह लिखीं जो प्रगतिवाद की कसौटी पर खरी न उतरतीं।[29] किसी ने कहा: "वह प्रगतिवादी आंदोलन के साथ रहे लेकिन उनके सिद्धांतों का प्रतिपादन करने वाले कभी नहीं रहे। उन सिद्धांतों में उनका पूरा विश्वास भी कभी नहीं रहा। उन्होंने मान लिया कि हम इस आंदोलन के साथ हैं और स्वयं उनकी कविता है, उसका जो बुनियादी संवेदन है, वह लगातार उसके बाहर और उसके विरुद्ध भी जाता रहा और अब भी है।"[30] अब तो यह मुद्दा हिन्दी आलोचना के लिए विवादास्पद भी नहीं माना जाता क्योंकि शमशेर का अंतर्विरोध एक स्थापित वस्तु बन चुका है - उनके अंतर्विरोध का हर रग-रेशा अतिपरिचित हो चुका है। उसमें अप्रत्याशितता नहीं रही-पीछे से आकर औचक आंख मूंदकर चौंका देने जैसी अप्रत्याशितता।

"हमें मालूम है कि उनकी अमुक-अमुक प्रतिक्रिया का कारण उनका अन्तर्विरोध है- हम अब उस प्रतिक्रिया में जाकर कुछ टटोलने और उसका

उत्स खोज निकालने को प्रेरित नहीं होते। वह अन्तर्विरोध स्थापित हो चुका है - चित्रलिखित जैसे किसी की व्याकुल मुद्रा।"[31]

क्या सचमुच शमशेर का अन्तर्विरोध स्थापित हो चुका है और यह अन्तर्विरोध प्रगतिवादी आदर्श और प्रयोगवादी रचना के बीच या कवि के घोषित आदर्श एवं उनकी रचना की मूल्य-दृष्टि के बीच स्पष्ट रूप से मौजूद है;क्या यही आरोप चित्रकार शमशेर पर भी लगाया जा सकता है या कवि शमशेर और चित्रकार शमशेर अलग-अलग हैं?या यह सही है जैसा कि मुक्तिबोध ने लिखा है कवि को चित्रकार का स्थानापन्न बना देने से और उस स्थानापन्न कवि के सम्मुख कार्य-क्षेत्र विस्तृत कर देने से, शमशेर की रचनात्मक प्रतिभा ने बहुत बार घोटाला कर दिया है"[32]
कवि शमशेर के **अंतर्विरोध** या तथाकथित **घोटाले** को समझने के लिए यहाँ थोड़ा रूककर कला में यथार्थ का अवबोध व यथार्थवाद से शमशेर के रिश्ते पर विचार कर लेना उपयोगी होगा। यथार्थ को लेकर दो तरह की धारणाएँ रही हैं जिसे दर्शन में सादृश्य (कॉरस्पान्डन्स) और संसक्ति (कोहिरन्स)का सिद्धांत कहा गया है । सादृश्य सिद्धांत के अनुसार इस संसार को वैज्ञानिक पद्धति से ---यानी आँकड़ों को जमा करके, परिभाषित करके, दस्तावेजीकरण करके जाना जा सकता है जबकि संसक्ति सिद्धांत के अनुसार इस दुनिया को अंतर्ज्ञानात्मक अवबोध तथा अंतर्दृष्टि से ही ज्ञेय बनाया जा सकता है । अत: *सादृश्य* के लिए सन्दर्भगर्भी(रेफरन्सियल) भाषा की जरूरत होती है जो वस्तुनिष्ठ दृष्टिकोण की माँग करता है जबकि *संसक्ति* संवेगगर्भी(इमोटिव) भाषा के सहारे काम करती है और इसलिए आत्मनिष्ठ दृष्टिकोण अपेक्षित होता है ।[33] कामरेड रुद्रदत्त भारद्वाज की शहादत की पहली बरसी पर लिखी कविता का आरम्भ शमशेर यूं करते हैं :

वह हंसी का फूल-

ऊषा का हृदय

बस गया है याद में: मानो

अहिर्निश

सांस में एक सूर्योदय हो!

(बात बोलेगी, पृ.66)

और सम्प्रति कविता, कवि और इतिहास का आरम्भिक अंश है:

"कविता तो
किरणों की धार में वेगमयी सविता है
जहाँ से कि
राग, उत्तप्त हो...
अंततः निस्तब्ध होते हैं!
रह-रह जहाँ से कि दिव्य रंग
रक्त ऊर्जा
उभरती।"

(बात बोलेगी, पृ.108)

स्पष्ट ही यहाँ शमशेर यथार्थ का कोई सादृश्य या उसका भ्रम उपस्थित नहीं करना चाह रहे हैं----- नाजिम हिकमत, ब्रेख्त, मायकोवयस्की, नाजार्गुन, केदारनाथ अग्रवाल जैसे कवियों की राजनैतिक-सामाजिक कविताएँ सामान्यतः व्यंग्य, रिटारिक, आख्यान, नाटकीयता का सहारा लेकर जिस **सन्दर्भगर्भी भाषा** का आश्रय ग्रहण करती हैं,उसका यहाँ नितांत अभाव है। शमशेर के आत्मनिष्ठ अवबोध के अनुरूप यहाँ **संवेगगर्भी भाषा** का प्रयोग हुआ है--- कामरेड रुद्रदत्त भारद्वाज की शहादत को *ऊषा के हृदय में हंसी का फूल* तथा जिसके याद में बसने को *अहिर्निश सांस में एक सूर्योदय हो!* कहकर कवि ने सामाजिक सन्दर्भ को अपने निजी सन्दर्भ से पदस्थापित कर दिया है।वैसे भी एक प्रविधि के रूप में यथार्थवाद एक रूढ़ि की तरह रहा है --- एक माध्यम विशेष में औपचारिक प्रतिरूपण (रेप्रज़ेन्टैशन)का एक ढाँचा जिसके हम अभ्यस्त होते हैं।चीजें सचमुच यथार्थ जैसी नहीं होती बल्कि रूढि और दुहराव उसे वैसा उपस्थित करती हैं ।[34]यूँ भी साहित्य में यथार्थवाद की अवधारणा यूरोप में उन्नीसवीं शताब्दी के फ्रांसीसी उपन्यासों के आधार पर

विकसित हुई जो यथार्थ के सादृश्यत्व पर आधारित था।यथार्थ का यह प्रतिमान कविता पर लागू करना नितांत भ्रामक है।

प्रभाववाद अतियथार्थवाद-यथार्थवाद के बाद या साथ-साथ शमशेर ने आगे के दशकों में कविता और चित्र दोनों ही क्षेत्रों में कई प्रकार के प्रयोग किये। ये प्रयोग विशेषकर शबीह कला एवं अमूर्तन के क्षेत्र में किये गये हैं। शमशेर संभवतः हिन्दी के पहले कवि हैं जिन्होंने व्यक्ति के अलावा कविता, चित्र एवं संगीत पर भी कविताएँ लिखीं। अगर एक ओर शमशेर ने नरेश मेहता (49) सिरोही साहब (49) निगम (49)नरेश मेहता, अश्क (50) भैरव प्रसाद गुप्त (50) माया-सम्पादक राजेश्वर प्रसाद सिंह (59) नागार्जुन (82)रंजना अरगड़े (84) तथा खुद का शबीह (जिनकी संख्या बारह है) क्रियोन,पेंसिल, जलरंग स्याही से बनाया तो दूसरी ओर निराला (39) शोभा (38-39) बच्चन (38) त्रिलोचन (41) महादेवी (43) कल्याणी बाई सैयद (45) कामरेड रुद्रदत्त भारद्वाज (49) सुभद्रा कुमारी चैहान (48) शशि बकाया (46) कामरेड नगेन्द्र सकलानी (49) नागार्जुन गिन्सबर्ग (62) मुक्तिबोध (64) भुवनेश्वर (58) अज्ञेय (58)रघुवीर सहाय, रजिया सज्जाद जहीर, प्रभाकर माचवे (71) नेरूदा, जगदीश चन्द्र माथुर (78) एजाज हुसैन, मदर टेरेसा (83) जैसे व्यक्तियों पर कविताएँ लिखीं। जिस प्रकार शमशेर के सबीह चित्रों में व्यक्ति के बाह्‍ - रूपाकारों पर उतना जोर नहीं है--- जिसका वैसे भी कोई मूल्य कैमरे के आविष्कार के कारण नहीं रह गया था उसी प्रकार व्यक्तियों पर लिखी गई उनकी कविताएँ पेन-पोट्रेट्स नहीं हैं और न पारम्परिक श्रद्धांजलियाँ ही हैं:

वहाँ सचमुच

-किसी कैमरे को यकीन न आएगा

वहाँ सब कुछ सब कुछ निरावरण है

जो जो कुछ है वही है।

(गोया वो....)

व्यक्ति यहाँ एक ऐसा दर्पण है जिसमें वे अपना और अपनी भावनाओं की सच्चाई का चेहरा देखते हैं। साही के शब्दों में कहें तो यहाँ चित और

अचित एक दूसरे को निषेध नहीं करते बल्कि एक-दूसरे को प्रतिबिम्बित करते हैं।[35]

चित्र,संगीत एवं काव्य रचना पर कविता लिखने का तो आरम्भ ही शमशेर से हुआ। इस संदर्भ में रेडियो पर एक योरपीय संगीत सुनकर (43) लिपटी संगीत में सब चीजें और कैना के फूल (56) चित्त प्रसाद की बहार शीर्षक कविता सुनकर (49) जय की कविताएँ तथा विजय सोनी के चित्र, अनिल चैधरी के चित्र, वान गौग का एक चित्र, रावल गोस्वामी के चित्र, एक स्टिल लाइफ जैसी कविताएँ ऐतिहासिक महत्त्व रखती हैं। इन कविताओं में एक प्रकार की भाषेत्तर भाषा का प्रयोग हुआ है:

जीवन की तुला में
प्राणों का संयमन
सहजतम एक अदभुत व्यापार
सरलता का हमारी ही तरह
कैसा दुरूहतम स्पष्टतम....
रेखाएँ तनों का तनावों का लिबास
लिबास रंग प्रतिबिम्ब आत्यन्तिक
तालमेल निरपेक्ष नाटकीय
स्थिरतरीय रेखाएँ और रंग
कसा हुआ मंच
सिरजन और संयमन
होने-होने को जो क्षण-क्षण
उसी अनागत का
स्वागत निरन्तर
पिकासोई कला।

(पिकासोई कला)

पोयेट्स आन पेंटर्स की भूमिका में मैकक्लेसी ने लिखा है कि चित्रकला पर जो कविताएँ लिखी जाती हैं उसके कई उद्देश्य होते हैं। यह अनुकरण करने एवं सीखने का एक तरीका भी हो सकता है। युवा देलाक्रा का अभ्यास अपने गुरु पुसीन के चित्रों की नकल कर किया करता था। इसी प्रकार किसी चित्र का वर्णन करते हुए कोई कवि सौन्दर्य-शास्त्र की समस्याओं - विषय-वस्तु, रंग और पद का रचना विधान आदि का अध्ययन कर सकता है। चित्रण एक किस्म की श्रद्धांजलि भी है, प्रेयसी का नख-शिख चित्रण पारम्परिक रूप से काव्यात्मक करतब माना जाता है, और एक चित्र भी उतना ही मोहक हो सकता है जितना कि एक अनिन्द्य होंठ या सुरमयी पलकें। किसी समकालीन चित्र पर लिखते हुए एक कवि को हो सकता है एक ऐसा मार्ग दिख जाए जहाँ कविता स्वयं बोलती है। किसी पुराने चित्र पर लिखना अतीत के बारे में ---कुछ ऐसी चीज के बारे में जो व्यतीत भी हो गई हो और सतत वर्तमान भी हो---लिखने का प्रायः सबसे बढ़िया तरीका साबित होता है।[36]चित्र के अतिरिक्त संगीत एवं काव्य पर शमशेर की लिखी गई रचनाओं से उपर्युक्त तथ्य की पुष्टि की जा सकती है।

अवबोध की दृष्टि से सन् 50 के बाद शमशेर तेजी से अमूर्तन की ओर बढ़ते दिखाई देते हैं। चित्रों में पूजा का एक सम्भव रेखागणित (50) एक आंसू की अगवानी में (51) कोंपल और कलियाँ (50-51) गोधूलि की वेला में दूर देहात का एक रेलवे स्टेशन (48-50) चांद की आंख और रक्तिम अधर (52) शकुन्तला के परीलोक में (48-50) तपती चट्टानों को बांधती एक कोमल जल-धारा (52)एक बहुमंजली इमारत चांद और धावक (55) जैसी कृतियों में सिर्फ शीर्षक ही दर्शक को किसी प्राकृतिक वस्तु के प्रत्यय या अवबोध से जोड़ सकता है नहीं तो इस दौर में शमशेर के अधिकांश ऐसे चित्र हैं जिनमें न कोई शीर्षक है और न पहचानने योग्य कोई प्राकृतिक वस्तु का आभास।[37]

शमशेर की लगभग आधी कविताएँ एवं चित्र अमूर्त हैं। अर्मूतन की प्रवृत्ति शमशेर के आरम्भ से ही देखने को मिलती है लेकिन सन् 50 के बाद सत्तर प्रतिशत रचनाएँ अमूर्त हो गईं। सन् 38 की लिखी कविता है सूर्य-अपोलो स्तुति, जिसकी आरम्भिक पंक्तियाँ हैं:

हे स्वर!

एक राग-जागरण

दिवा-निशि! तुम साक्षात्

मौन प्रवर्तन! रति मति लय के

छवि नर्तन की शक्ति! अजात

जीवन गति अनुपात।

1958 की लिखी होली: रंग और दिशाएँ तो घोषित एब्स्टैªक्स पेंटिंग हैं:

जंगले जालियाँ

स्तंभ

धूप के संगमरमर के,

ठोसतम के।

कंटीले तार हैं

गुलाब बाड़ियाँ।

दूर से आती हुई

एक चैपड़ की सड़क

अंतस में

खोई जा रही है।

अपनी एक कविता में शमशेर कहते हैं:

उसने मुझसे पूछा तुम्हारी कविताओं का क्या मतलब है

मैंने कहा- कुछ नहीं।

उसने पूछा- फिर तुम इन्हें क्यों लिखते हो

मैंने कहा- ये लिख जाती हैं! तब

इनकी रक्षा कैसे हो जाती है

उसने क्यों यह प्रश्न किया

(राग)

शमशेर के अनुसार, "इन खाकों में कुछ है जो महज इशारे हैं। जिनमें व्यंजना की परोक्षता ही केवल व्यक्त हुई है। जैसे रेखागणित की शक्लें होती हैं। उनका शब्दिक अर्थ कुछ नहीं है।"[38]

यथार्थवाद अभिव्यक्ति का स्वीकारात्मक रूप है जिसमें जीवन के त्रासदी तत्व के प्रति एक प्रकार का स्वीकार भी सन्निहित होता है लेकिन अमूर्तन एक ऐसे व्यक्ति की प्रतिक्रिया है जो शून्यता के नरक से लड़ रहा है यह तीव्र व्यथा की ऐसी अभिव्यक्ति है जो आवयविक सिद्धांत पर अविश्वास करती है और मानव मन की सृजनात्मक स्वतंत्रता को स्वीकार करती है। ऐसी स्थिति में अमूर्त कला और अस्तित्ववादी दर्शन के विकास के बीच एक दिलचस्प समानान्तरता देखी जा सकती है।[39]

अमूर्त अवबोध के कई सूत्र शमशेर की जीवन-स्थितियों में भी ढूंढे जा सकते हैं लेकिन सच्चाई यह है कि शमशेर की कम ही ऐसी कविताएँ या चित्र हैं जिसे शुद्ध यथार्थवादी या शुद्ध अमूर्त कृति कहा जा सके। उनकी अधिकांश चर्चित रचनाएँ ऐसी हैं जिसमें यथार्थ एवं अमूर्त के मेल की अदभुत कीमियागिरी है। *फिर भी क्यों, ये लहरें घेर लेती हैं, सागर-तट, राग, वह सलोना जिस्म, एक पीली शाम, उषा, एक नीला आईना बेठोस, टूटी हुई बिखरी हुई, लौट आ ओ धार, सौंदर्य, एक नीला दरिया बरस रहा* ऐसी ही कविताएँ हैं।

प्रसिद्ध घनवादी चित्रकार जुआं ग्री कहा करते थे कि मेरे लिए चित्रकारी एक वस्त्र की तरह है: भिन्न-भिन्न सूत्रों से बना हुआ पर एकरूप, जिसमें एक ओर प्रतिरूपात्मक एवं सौंदर्यगत तत्वों वाला सूत्र है तो दूसरी ओर तकनीकी, स्थापत्य या अमूर्त तत्वों का सूत है। दोनों ओर के ये सूत अन्योन्याश्रित एवं एक दूसरे के पूरक होते हैं इसलिए अगर एक ओर के भी सूत की कमी हुई तो वस्त्र बनना संभव नहीं।[40]

शमशेर इस सच्चाई को जानते थे, तभी तो उन्होंने कहा: "हमारे ही यहाँ की सांस्कृतिक परम्परा में देखिए- सत्य या यथार्थ की व्यंजना जिस रूप में पायी जाती है- उसमें यथार्थ और अयथार्थ मूर्त और अमूर्त का मिश्रण मिलता

है। शिवलिंगों और देवियों के ध्यान के जो रूप हैं वह अमूर्त के श्रेष्ठ और सरलतम उदाहरणों में रखे जा सकते हैं।"[41]

क्या स्वयं शमशेर की कृतियों के बारे में भी यही कहा जा सकता है?

कविता की सम्वेदना

शमशेर ने छह दशक की अपनी कला-यात्रा में करीब साढ़े तीन सौ कविताएँ, चालीस गद्य रचनाएँ तथा दो सौ चित्रों की रचना की। शमशेर कवि भी हैं, गद्यकार भी और चित्रकार भी और इनके अवबोध में एक प्रकार की समानता हैं। वे इस संसार को एक खास निगाह से देखते हैं। वे वस्तुओं के वाह्य रूपाकार को चित्रित करने के बजाय उसकी आत्मा, उसके सार को अभिव्यक्त करने के नये-नये तरीके ढूंढ़ने का प्रयास करते हैं। यह प्रयास कई बार इतना अपारम्परिक होता हैं, असमकालीन होता हैं कि रचना अमूर्त और अबूझ जान पड़ती हैं। आलोचकों ने शमशेर की रचना पर अक्सर कठिनता और दुरूहता का आरोप लगाया है लेकिन इस दुरूहता का कारण सम्प्रेषण की असफलता नहीं हैं बल्कि रचनाकार के विशिष्ट अवबोध की प्रमाणिकता है। शमशेर किसी भी कीमत पर अपने अवबोध की प्रामाणिक अभिव्यंजना से समझौता नहीं करते। वे अपनी रचना को सहज सम्प्रेषणीय बनाने के नाम पर अपने अनुभवों की विशिष्टता को तज कर सामान्यीकरण का कभी सहारा नहीं लेते। वे संभवतः रचनाकार का यह दायित्व मानते हैं कि वह पाठकों को अखबारी तथ्य मुहैया कराने के बजाय रचना के गहरे, बहुरूपी सत्य का दर्शन कराये। शमशेर की अधिकांश रचनाएँ रचनाकार के इस दायित्व का निर्वाह करती हैं। सामान्यतः शमशेर बहादुर सिंह की पहचान एक कवि के रूप में की जाती है। साठ साल लंबी (1932--92) काव्य यात्रा में करीब साढ़े तीन सौ कविताएँ उन्होंने लिखीं जो आठ काव्य संग्रहों में संकलित हुई। कुछ कविताएँ(1959) कुछ और कविताएँ (1961) चुका भी हूँ मैं नहीं(1975) उदिता(1980) बात बोलेगी(1981) काल तुझसे होड़ है मेरी (1988) इतने पास अपने(1980) कहीं बहुत दूर से सुन रहा हूँ(1995) में संकलित तीन सौ तिरेपन (353) कविताएँ न सिर्फ कवि शमशेर की काव्य-शक्ति एवं सीमाओं की पहचान कराती हैं बल्कि आधुनिक हिन्दी कविता की प्रकृति एवं दिशा में भी संकेत करती हैं।

शमशेर ने जब कविता लिखना शुरू किया तब वह छायावाद का युग था। आश्चर्य नहीं कि शमशेर की आरम्भिक कविताओं पर इसका गहरा असर हैं। सन बत्तीस की लिखी कविता *सहन सहन बहता है वायु* की आरम्भिक पंक्तियाँ हैं:

सहन-सहन बहता है वायु

मुक्त उसांसो का स्वर भर

सम्हल-सम्हल कर झुकती डाल:

आकुल-उर तरू का मर्मर।

इस कविता का शब्द-चयन, छंद, विषय-वस्तु और कविता की पूरी संरचना छायावादी प्रभाव लिये हुए है। इसी प्रकार *मैं भारत गुण-गौरव गाता,* (1933) *नव कवि का आह्वान* (1933) *सजल स्नेह का भूषण केवल*(1934) *आज हृदय भर-भर आता है* (1937) *कवि-कला का फूल हूँ मैं* (1937) जैसी कविताओं से भी उदाहरण दिया जा सकता है। इसी प्रकार उत्तर छायावाद और प्रगतिवाद के दौर में शमशेर समकालीन काव्य प्रवृत्तियों से प्रभावित नजर आते हैं। *पागल का गीत, नशा* जैसी कविताओं में उत्तर छायावादी संवेदना को आसानी से लक्षित किया जा सकता हैः

फिर वह बेकार जवानी

जो न गयी अपनी मनमानी

जो न हुई अपनी दीवानी-

अपनी अपनेपन में।

वाम-वाम वाम दिशा/समयः साम्यवादी घोषित करने वाले शमशेर पांचवें दशक के आरम्भ की अपनी कई कविताओं में प्रगतिवादी अवबोध से प्रेरित दिखाई पड़ते हैं। इस संदर्भ में *फिर एक हिलोर उठी* (1940) *लेकर सीधा नारा* (1941) *ये शाम है* (1944) *बात बोलेगी* (1945) *अकाल* (1945) जैसी कविताओं को याद किया जा सकता है। लेकिन शमशेर की पहचान जिन कविताओं से बनीं वे कविताएँ प्रायः प्रयोगवाद-नयी कविता के दौर में लिखी गई। *ये लहरे घेर लेती हैं* (1943) *सागर-तट* (1945) *वह सलोना जिस्म*

(1949) *आओ* (1956) *एक पीली शाम* (1953) *टूटी हुई बिखरी हुई* (1954) *उषा* (1956) *एक नीला आईना बेठोस* (1956) *धनीभूत पीड़ा* (1956--58) जैसी कविताओं में शमशेर ने संवेदना और शिल्प के धरातल पर कई प्रयोग किए और इन प्रयोगों के चलते ही वे *नयी कविता का प्रथम नागरिक* माने गये।

शमशेर की अधिकांश कविताएँ कवि की निजी दुनिया का आईना हैं। कवि की बेहद आत्मनिष्ठ ध्वनियों से निर्मित एक प्रति-संसार जिसमें बाहरी यथार्थ के अनुरूप जीवन जीने की बाध्यता के खिलाफ अपनी एक निजी एवं निष्कलुष संसार रचने की सिफारिशें हैं। आश्चर्य नहीं कि शमशेर जिस विलयनवादी काव्य को तरजीह देते हैं वहाँ कवि का बिंब ही कविता का पाठक है।

एक विलयनवादी काव्य जो कि न केवल

मैं लिखता-लिख सकता- हमेशा नहीं-

वैसा काव्य। जैसा कि इनमें ध्वनित-अध्वनित

स्वः

इसलिये उसमें अपने को खो दिया जाना गवारा करता हूँ

क्योंकि वहाँ मेरा एक महीन युग मान है।

वहीं शायद मेरे लिए मात्र। शायद

मेरे ही अनेक बिंबों के लिए मात्र

जिन्हें मेरे पाठक कहाँ जाए मात्र।

(एक नीला दरिया बरस रहा)

यह सच है कि शमशेर की कविताओं में कवि के ध्वनित-अध्वनित स्व में ही महीन युग-भाव है और जिसे अखबारी सच की तरह समाजशास्त्रीय ढंग से नहीं पकड़ा जा सकता। शमशेर की कविताएँ सहन सम्प्रेषण होने के बजाय पाठक को कवि की विशिष्ट अभिव्यक्ति के रहस्य से परिचित होने के लिए आमंत्रित करती है।

कलाकृतियाँ सामन्यतया कलाकार की संवेदना की उपज होती हैं कि कलाकार के मानसिक एवं सामाजिक परिवेश के आसपास लगातार घटित होने वाली घटनाओं में क्या कुछ है जिससे वह प्रभावित होता है, प्रतिश्रुत होता है या निर्लिप्त रहता है। इसी अर्थ में कलाकृतियाँ कलाकार के मूल सरोकारों का घोषणा-पत्र होती हैं। इसी संदर्भ में प्रेम और सौंदर्य, मानव और प्रकृति-प्रेम, सामाजिक और यथार्थ चेतना जैसे कवि के मूल सरोकारों के सहारे शमशेर की काव्य-संवेदना की पड़ताल की जा सकती है। लेकिन कलाओं में काव्य-संवेदना का जितना महत्त्व है, शिल्प का भी उतना ही महत्त्व है क्योंकि शिल्प पर सिद्धहस्तता हासिल किए बगैर संवेदना का सम्प्रेषण संभव नहीं। शमशेर एक सिद्ध शिल्पी माने जाते हैं। उनकी कविताओं में भाषा एवं शिल्प, प्रतीक-योजना एवं बिम्ब विधान की विवेचना के सहारे कवि के शिल्प की उन विशिष्टताओं को चिन्हित किया जा सकता है जिसके चलते आधुनिक हिन्दी कवियों में वे *कवियों के कवि* के रूप में जाने जाते हैं।

<u>काव्य-संवेदना:प्रेम और सौन्दर्य</u>

प्रेम का कंवल कितना विशाल हो जाता है

आकाश जितना

और केवल उसी के दूसरे अर्थ सौंदर्य हो जाते हैं

मनुष्य की आत्मा में

मनुष्य की आत्मा में प्रेम का कंवल जब आकाश जितना विशाल हो जाता है तो उसी के दूसरे अर्थ सौंदर्य हो जाते हैं। प्रेम और सौंदर्य का यह अद्वैत है जिसे शमशेर की अधिकांश कविताओं में देखा जा सकता है। शायद इसीलिए यह बात प्रसिद्ध है कि शमशेर प्रेम और सौंदर्य के कवि हैं। प्रेम और सौंदर्य का यह अद्वैत वस्तुतः शमशेर की काव्यानुभूति का पर्याय है।

मलयज से उन्होंने एक बार कहा था: “कविता के माध्यम से मैंने प्यार करना अधिक से अधिक चीजों को प्यार करना सीखा है। मैं उसके द्वारा सौंदर्य तक पहुँचा हूँ। मेरी चेतना, इतनी कह लो कि कंडीशंड हो चुकी है, कि हर चीज में मुझे एक अन्तःसौंदर्य दिखाई देता है, बिना किसी आतंरिक कांशस प्रयत्न के सौंदर्य का पूरा एक कम्पोजीशन........।” [42]

बिना किसी आंतरिक कांशस प्रयत्न के हर चीज में एक अंतःसौंदर्य तभी दिखाई पड़ सकता है जब व्यक्ति की चेतना उस अवस्था में हो जिसे कृष्णमूर्ति विकल्पहीन चैतन्यता[43] की अवस्था कहते हैं। अहं अनिवार्यतः पूर्वाग्रही होता है जबकि सहज चैतन्यता हर प्रकार के पूर्वाग्रह से मुक्त शुद्ध अवबोध का नाम हैं। सौंदर्य शीर्षक कविता में शमशेर की आरजू है:

काश कि मैं न होउं

न होउं

तो कितना अधिक विस्तार

किसी पावन विशेष सौंदर्य का

अवतरित हो!

पावन विशेष सौंदर्य का! शमशेर को पता है कि मैं (अहं) के रहते सौंदर्य का साक्षी होना संभव नहीं इसलिए प्रकृति पर अपने अहं का आरोप करने के बजाय वे अपने को प्रकृति के अहं का हिस्सेदार बनाते हैं। ताओ के दर्शन में चेतना की इस स्थिति को अ-ज्ञान (नो-नालेज) की स्थिति कहा गया है। इस स्थिति में व्यक्ति को वन वैसा दिखाई देता है जैसा वह एक पेड़ को दिखता है।[44] कवि-कर्म के स्तर पर इस स्थिति को प्राप्त करना एक मुश्किल लक्ष्य है,लेकिन शमशेर की अधिकांश कविताएँ इस असंभव से लक्ष्य को प्राप्त करने की दिशा में प्रयत्नशील दिखाई देती हैं।

विजय देव नारायण साही ने बहुत पहले ही शमशेर की काव्यानुभूति की बनावट समझने के क्रम में यह निष्कर्ष निकाला था कि, “तात्विक रूप में शमशेर की काव्यानुभूति सौंदर्य की ही अनुभूति है। जिन लोगों का ख्याल है कि छायावाद के बाद हिन्दी कविता ने सौंदर्य का दामन छोड़ दिया है, उन्होंने शायद शमशेर की कविताओं का आस्वादन करने का कष्ट कभी नहीं किया। मैं एक कदम और आगे बढ़कर कहना चाहूँगा कि आज तक हिन्दी में विशुद्ध सौन्दर्य का कवि यदि कोई हुआ है तो वह शमशेर है और इस आज तक में मैं हिन्दी के सब कवियों को शामिल करके कह रहा हूँ।..... सच तो यह है कि शमशेर की सारी कविताएँ यदि शीर्षकहीन छपे, या उन सबका एक ही शीर्षक हो सौंदर्य, शुद्ध सौंदर्य तो कोई अंतर नहीं पड़ेगा।” [45] यह सच है कि

शमशेर के लिए सौंदर्य साध्य है लेकिन देखना यह चाहिए कि वे सौंदर्य कहाँ देखते हैं। सौंदर्य को संबोधित एक कविता में वे कहते हैं:

सौंदर्य जो त्वचा में नहीं

थिरकते रक्त में नहीं

मस्तिष्क में नहीं

नहीं

कहीं इनके पार से

बरसता है अणु-अणु पल-पल में

बदन में, दृष्टि में

शब्दों में: और उनके पार से

कहीं शब्द के अर्थ में

दुखः सा मौन सा

अपरिमित सुख की चेतना में

मथता है

मथता है।

(चुका भी हूँ मैं नहीं, पृ. 98)

त्वचा, रक्त् और मस्तिष्क के पार से अणु-अणु पल-पल में बदन में दुख-सा, दृष्टि में मौन सा और शब्द में अर्थ-सा बरसने वाला यह सौंदर्य कोई आध्यात्मिक रहस्यवादी अनुभव नहीं है बल्कि ठोस सांसारिक अनुभव है, जीवन को बन्धनमुक्त करने का अनुभव है।

रूसी साहित्यकार बोरिस पास्तरनाक ने कहीं लिखा है कि सुंदर स्त्री की प्रशंसा करते हुए उसके सौंदर्य के रहस्य को चाह पाना, जीवन की गुत्थी को सुलझाने के समान है।[46] इस प्रकार, सौंदर्य का रहस्य जीवन का रहस्य है। शमशेर की माडल और आर्टिस्ट शीर्षक कविता में कलाकार माडल को कला में बांधने के क्रम में यह निष्कर्ष निकालता है कि

यह हो तुम

शब्द नहीं, न रूप

आकार, न चाप, न अर्थ: वह सत्ता

जो होने-होने को हो मेरे अंदर

वही तुम।

(चुका भी हूँ मैं नहीं, पृ. 82--83)

शब्द, रूप, आकार, चाप और अर्थ के परे, जो सत्ता है वह वस्तुतः सौंदर्य का अनिवर्चनीय रूप हैः

वही तुम/

कहाँ शरीर त्वचा केश/

अधर वक्ष जंघा/

ये केवल आवरण सघनतम/

रूपार्थ के आवरण ।

(वही, 83)

शमशेर की कविता रूपार्थ के सघनतम आवरण को भेदकर उसमें निहित प्रेम और सौंदर्य के अंतःसंगीत को उद्घाटित करने की कविता है।इन कविताओं में प्रेम के सहज, आत्मीय एवं स्वतःस्फूर्त स्वभाव का चित्रण हुआ है- इसमें न रीतिकालीन प्रेम के पुरुष केन्द्रित सोच की छाया है और न छायावादी प्रेम की वायवीयता से दबी हुई भावनाएँ हैं।हिन्दी में एक ओर रीतिकालीन प्रेम का पुरुष केन्द्रित सामंती संसार है जिसमें

गुलगुली गिलमें, गलीचा हैं,गुनीजन हैं,चाँदनी हैं, चिक हैं, चिरागन की माला हैं /

कहे पद्माकर ज्यों गजक गिजाएँ सजीं, सेज हैं, सुराही हैं, सुरा है और प्याला है /

सिसिर के पाला कौन व्यापत कसाला तिन्हैं, जिनके अधीन एते उदित मिसाला हैं ।

तान, तुक-ताला हैं, विनोद के रसाला हैं,सुबाला हैं, दुसाला हैं,विसाला चित्रसाला हैं ।

ज़ाहिर है इस दुनिया में पुरूष यही कह सकता है :

सुन ले मेरी ब्याही औरत!
ऊपर से नीचे तक पूरा
अंगुल-अंगुल इस देही का
मेरा ही बस मेरा ही है।
घर के भीतर बेड़ी-बेड़ी
केवल दर्पण में मुख देखे
लम्बे से घूंघट को खींचे
केवल चूड़ी की धुन सुन ले।
खाना ले ले, कपड़ा ले ले,
आने-जाने दे यह सांसे,
पूरी कर दे पापी इच्छा
दर्जन बच्चे पैदा कर तू।

(केदारनाथ अग्रवाल,जो शिलाएँ तोड़ते हैं,पृ. 42)

ऐसे में शमशेर का काव्य-नायक कहता है:

हाँ तुम मुझसे प्रेम करो जैसे मछलियाँ लहरों से करती हैं
जिनमें वह फंसने नहीं आतीं,
जैसे हवाएँ मेरे सीने से करती हैं
जिसको वह गहराई तक दबा नहीं पातीं,

तुम मुझसे प्रेम करो जैसे मैं तुमसे करता हूँ।

(टूटी हुई बिखरी हुई)

यहाँ प्रेम को कितना सहज रूप में कल्पित किया गया है; ऐसा प्रेम जिसमें किसी भी प्रकार की **इदंममत्व** की भावना नहीं है, ऐसा प्रेम, जिसमें किसी भी प्रकार के स्वामित्व का निषेध है--- इसे सच्चे अर्थ में आधुनिक प्रेम का घोषणापत्र कहा जा सकता है।

अपनी डायरी में शमशेर लिखते हैं: "टैगोर ने बहुत ही प्यारी बात एक जगह कही है (उसका अर्थ पकड़ने के लिए यह जरूरी नहीं है कि हम ईश्वर में विश्वास ही करें)- वह यह किः ईश्वर से बढ़कर कोई किसी को प्यार नहीं कर सकता। (क्यों? कैसे? क्योंकि वह हमें पूरी तरह आजाद छोड़ देता है।) कभी किसी बात के लिए हम पर कोई दबाव नहीं डालता। इस पर भी नहीं कि हम माने कि वह है। इतना निःसंग, इतना बेगरज, इतना तटस्थ...और फिर भी वह हमारे रग-रग के सुख, और दुख से वाकिफ है।"[47]

शमशेर की कविताओं में प्रेम का ऐसा ही मुक्तिकामी रूप वर्णित हुआ है।

हिन्दी प्रेम-कविता में ऐन्द्रियता का रीतिकालीन अनुषंगों से हटकर आधुनिक पीठिका पर प्रतिष्ठित होना एक विशेष घटना है और इस संदर्भ में शमशेर का नाम नेरूदा की याद दिलाता है। नेरूदा के प्रथम काव्य-संग्रह *बीस प्रेम-कविताएँ एवं एक हताश-गीत* (1924) के प्रकाशित होने पर उनके एक आलोचक ने लिखा थाः प्रेम और सेक्स कविता के पारंपरिक विषय रहे हैं। लेकिन श्रृंगारिक कथा-वस्तु की प्रकृति प्रायः रूढ़िबद्ध रही है। शरीर के उद्दाम अंगों को रूपकों के सहारे अमूर्त एवं आदर्शीकृत करने की परम्परा रही है और प्रेयसी के समक्ष काव्य-नायक अपने हृदय के उद्गारों को बड़े ही साहित्यपूर्ण तरीके से उसे एक रहस्यवादी समर्पण के रूप में अभिव्यक्त करते रहे हैं। पाबलो नेरूदा ने अपने प्रथम काव्य-संकलन के द्वारा इस कुलीन परम्परा को छिन्न-भिन्न करते हुए आदर्शवाद की जगह ऐन्द्रियता एवं अमूर्त्तता की जगह पर मांसलता को प्रतिष्ठित किया। *बीस प्रेम कविताएँ एवं एक हताश गीत* में प्रेम पेट्राक्यिन माडल वाली भावुकता एवं विरह लिए हुए नहीं था बल्कि श्रृंगारिक भावनाओं के ऐन्द्रिय उल्लासों का खुला चित्रण किया गया था।[48]

अगर आप छायावादी-काव्य-परिदृश्य को याद करें तो ऊपर जो बात नेरूदा के बारे में कही गयी है वह शमशेर के बारे में भी कही जा सकती है। पंत की इन पंक्तियों को याद करें: - *तुम्हारे छूने में था प्राण/संग में पावन गंगा स्नान/तुम्हारी वाणी में कल्याणि/त्रिवेणी की लहरों का गान।* (पल्लव) या फिर प्रसाद की यह कविता: *मेरी आंखों की पुतली में/तू बनकर प्राण समा जा रे /जिससे कन-कन स्पन्दन हो/मन में मलयानिल चन्दन हो/करुणा का नव अभिनन्दन हो-वह जीवन-गीत सुना जा रे /* (लहर)।

अब शमशेर की पंक्तियों को पढ़ें:

एक ठोस बदन अष्टधातु का-सा

सचमुच ?

जंघाएँ दो ठोस दरिया

ठै रे हुए --से

मगर जानता हूँ कि वो

बराबर-बराबर बहुत तेज़

रौ में है

ठै रा हुआ-सा मैं हूँ मेरी

दृष्टि एकटक्

ठोस वक्ष कपोल उभरे हुए चारों

निमंत्रण देते चैलेंज सा

चारों एक साथ

(काल तुझसे होड़ है मेरी/105)

यह पूरा

कोमल कांसे में ढला

गोलाइयों का आईना

मेरे सीने से कसकर भी

आज़ाद हैं

(प्रेयसी)

वह आयी और मुझसे कहा कि मुझे कला में बांधों।

ये हैं मेरे वक्ष--- गोल से गोल; कहीं देखें होंगे तो कहो, ऐसे

ये--ये ही बिम्बाधर

जल रहे हैं जहाँ अंगारे,

यह कटि प्रदेश

जंघाएँ, कि गोरे पारद के दो

दरिया; ये केश

कि रात के जादू को प्रवेश.... यही होता है---

(माडल और आर्टिस्ट)

यहाँ तथाकथित साहित्यिकता के स्थान पर ऐन्द्रियता एवं अमूर्त्तता के स्थान पर मांसलता को प्रतिष्ठित होते देखा जा सकता है। खुजराहो एवं कोणार्क के मंदिरों में उत्कीर्णित मूर्तियों की तरह इन पंक्तियों में ऐन्द्रिय उल्लास का जो अकुंठित रूप उभरा है, वह पूरी हिन्दी कविता में दुर्लभ है। इसे रूमानियत और रीतिवाद का संगम[49] कहना कवि और कविता के साथ अन्याय है।

राम स्वरूप चतुर्वेदी का कहना सही है कि शमशेर के काव्य की एक बड़ी उपलब्धि यह है कि उन्होंने प्रेम और सौंदर्य को पूर्व-निर्धारित उदात्तता के घेरे में से निकाला है। उनका आत्मविश्वास ऐसा है कि वे उसके प्रति सजग नहीं हैं, वह है तो है। वैसे ही अगर न होता तो न होता, उसका क्या गम। इसीलिए उनके सौंदर्य चित्रण या प्रणय-निवेदन में कहीं नाटकीयता नहीं।[50] अब अगर *घिर गया है समय का रथ कहीं (*1946) कविता पढ़े तो आप देखेंगे कि यहाँ प्रकृति के व्यापार को किस अनूठे ढ़ँग से---प्रतीकात्मक एवं अभिधात्मक दोनों रूपों में चित्रित किया गया है।कविता का आरम्भ काली रात के आने से होता है जो सन्ध्या का टीका अर्थात चन्द्रमा को अपने साथ लेकर आई है। सामने

ऊपर उठाये हाथ सा पथ पढ़ गया यानि यह संकेत है कि पहाड़ी प्रदेश है जहाँ पगडंडियाँ, ऊपर उठाये हाथ सा दिखाई देती है। अगले चरण में, चांदनी के फैलने का चित्रण है जिसके लिए बिंब निर्मित किया गया है: अंचल विन्ध्या पर घेरने को दुर्ग की दीवार मानो पंचमी की रात की सिहरती चांदनी ने कुंडली खोली। कुंडली खुलने की क्रिया सांप के साथ सम्बद्ध है और सांप जिज्ञासा का प्रतीक है। आगे कहा गया है,घूमना उत्तर दिशा को सघन पथ/संकेत में कुछ कहा गया। यह संकेत कविता के अगले चरण में स्पष्ट होता है।:

चमकते तारे लजाते हैं

प्रेरणा का दुर्ग।

पार पश्चिम के, क्षितिज के पार

अमित गंगाएँ बहाकर भी

प्राण का तन धूल-धूसित है।

चांदनी रातों में तारों का फीका पड़ना एक सामान्य अनुभव है लेकिन यहाँ कविता में प्रकृति के मानवीकरण की प्रक्रिया में चमकते तारे लजाते हैं और प्राण का तन धूल-धूसित है।

अगले बंद में, उषा ने आते ही रात्रि के हृदय के अनमोल भावों के भेद खोल दिए, परिणामतः दुख उदित हुआ, सूरज के उदय के साथ:

भेद उषा ने दिए सब खोल

हृदय के कुल भाव

रात्रि के अनमोल

दुख कढ़ता सजल, झलमल।

आंख मलता पूर्व स्रोत।

पुनः

पुनः जगती जोत।

लेकिन स्त्रोत के जगने के सथ सूर्योदय अबाधित नहीं हुआ बल्कि घिर गया है समय का रथ कहीं/लालिमा में मढ़ गया है राग। सूरज के (बादलों में) घिरने से

आकाश का लालिमा से मढ़ जाना एक प्राकृतिक व्यापार है लेकिन यहाँ कविता में व्यंजना यह है कि समय के ठहरने, रुकने का बोध रागदीप्ति का कारण बनता है या रागदीप्ति अवस्था में समय के रुक जाने का बोध होता है। ऐसे रागदीप्त अवस्था में भावना की ऊंची (तुंग) लहरें अपना पंथ (कि लहरे ऊपर उठने के बाद नीचे ही जायेंगी) और अपना अंत जानकर मुक्ति के उद्गार को रोलती है-

भावना की तुंग लहरें

पंथ अपना, अंत अपना जान

रोलती है मुक्ति के उद्गार।

निष्कर्ष यह है कि भावनाओं की सिद्धि मुक्ति के उद्गार को अभिव्यंजित करने में है।

हिन्दी साहित्य में यह धारणा रूढ़ हो गयी है कि प्रगतिशील चेतना से सिर्फ राजनीतिक-सामाजिक यथार्थ का ही संबंध है। सौंदर्य और प्रेम इसके घेरे से न सिर्फ बाहर माने जाते हैं बल्कि रीतिवादी तलछट कहकर इसका विरोध भी किया जाता रहा है। लेकिन जिस समाज ने सौंदर्य-बोध खो दिया है वहाँ कोई कलाकार अगर एक साधारण से फूल का चित्रण कर फिर से उसमें सौंदर्य-चेतना का संचार करता है तो क्या यह प्रशंसनीय कर्म नहीं है? सौंदर्यशास्त्री कहते है कि किसी भी वस्तु में सौंदर्य देखते हुए हमें उसके वृहत्तर सामाजिक एवं व्यावहारिक महत्त्व का बोध होता है- संपूर्ण रूप से पूरी मानवता के लिए और प्रजाति के रूप में मनुष्य के लिए इसकी महत्ता का बोध होता है।[51] अपनी एक कविता में शमशेर कहते है:

मैं तुम्हारे व्यक्तित्व के मुख में

आनन्द का स्थायी....ग्रास हूँ।

(काल तुझसे होड़ है मेरी, पृ. 103)

कहा जा सकता है कि प्रेम और सौंदर्य के व्यक्तित्व के मुख में शमशेर की कविता आनन्द का स्थायी ग्रास है।

काव्य-संवेदना:मानव और प्रकृति प्रेम

शमशेर की **राग** शीर्षक कविता का आरम्भिक अंश है:

मैंने शाम से पूछा:

या शाम ने मुझसे पूछा:

इन बातों का मतलब?

मैंने कहा-

शाम ने मुझसे कहा:

राग अपना है।

यहाँ प्रकृति और मनुष्य का जो संबंध उद्‌घाटित हुआ है वह पारम्परिक ढंग से बिल्कुल अलग है। यहाँ प्रकृति, मनुष्य की भावनाओं का परिवेश या दर्पण भर नहीं है बल्कि दोनों एक-दूसरे में अन्तर्गुम्फित हैं। निर्मल वर्मा के शब्दों में कहें तो यहाँ लेखक देखने वाला सबजेक्ट नहीं है और दुनिया दिखायी देने वाली आब्जेक्ट नहीं है बल्कि दोनों एक-दूसरे के बीच में है, मनुष्य दुनिया के बीच में है, प्राणियों में एक प्राणी, जीवों में एक जीव, वह दूसरों को देखता है, तो दूसरे भी उसे देखते हैं, कुछ उसी भाव में जैसे कभी पाल क्ले ने कहा था- जब कभी मैं जंगल में घूमता हूँ तो मुझे लगता है कि जहाँ मैं पेड़ों को देख रहा हूँ, वहाँ पेड़ मुझे देख रहे हैं।[52] प्रकृति और मनुष्य के अन्तर्गुम्फित संसार की कई छवियाँ शमशेर के काव्य में दर्ज हैं।

एक नीला आइना

बेठोस-सी यह चांदनी

और अंदर चल रहा हूँ मैं

उसी के महातल के मौन में।

(एक नीला आइना बेठोस)

यहाँ चांदनी के नीले आइने के अंदर चलता हुआ व्यक्ति है तो कहीं

पूरा आसमान का आसमान है

एक इन्द्रधनुषी ताल

नीला सांवला हल्का-गुलाबी

बादलों का धुला

पीला धुआ...

मेरा कक्ष, दीवारें, किताबें, मैं, सभी

इस रंग में डूबे हुए-से

मौन।

(पूरा आसमान का आसमान)

शमशेर के यहाँ प्रकृति *इतने पास अपने* है कि बादल अक्टूबर के/हल्के रंगीन ऊदे/मद्धम् मद्धम् रुकते/रु क ते- से आ जाते/इतने पास अपने!

एक्-इक पत्ता सा कत्

ठैरा, सन्ध्याभा में

सुनता-सा कुछ... किसको

इतने पास अपने !

(इतने पास अपने)

अक्टूबर के बादल या शाम का यह मन्द मंथर रूप हिन्दी कविता का यह रूप: शील तन गिरि श्रेणियों के उधर/झर रही है धूप-स्वर्णिम धूल..../ओढ़ श्याम दुकूल नभ से झांकता बादलों के स्वर्णिम धूल से बचने के लिए श्याम दुकूल ओढ़े नभ से झांकता यह लोहित फूल।(इन्दु विहान) नीले पहाड़ी के पार बादलों के स्वर्णित धूल से बचने के लिए श्याम दुकूल ओढ़े नभ से झांकता यह लोहित फूल (चन्द्रमा) भी मनुष्य का अन्तरंग जान पड़ता है। इसी प्रकार उषा का यह बिंब: प्रात नभ था बहुत नीला शंख जैसे/भोर का नभ/राख से लीपा हुआ चौका/ (अभी गीला पड़ा है)/बहुत काली सिल जरा से लाल केसर से/कि जैसे धुल गई हो(उषा) यहाँ प्रकृति, पर्यवेक्षक की अन्तरंगता का प्रतिबिम्ब जान पड़ता है। इसी प्रकार

धूप कोठरी के आइने में खड़ी

हंस रही है

पारदर्शी धूप के पर्दे

मुस्कराते

मौन आंगन में

मोम सा पीला

बहुत कोमल नभ

एक मधुमक्खी हिलाकर फूल को

बहुत नन्हा फूल

उड़ गई

आज बचपन का

उदास मां का मुख

याद आता है।

(धूप कोठरी के आइने में खड़ी)

इस कविता में धूप, नभ, फूल, मधुमक्खी, बचपन, मां का मुख समान संवेदनाओं से आंदोलित जान पड़ते हैं। यहाँ कोठरी के आइने में हंसती धूप या मोम सा पीला बहुत कोमल आकाश या एक नन्हें फूल को हिलाकर ही देशकाल में समानान्तर घटित होते दिखाई गई हैं। इससे प्रकृति और मनुष्य की संवेदनाएँ एक ही सूत्र से बंध गई हैं। क्या कालिदास की तरह शमशेर के लिए भी यह कहा जा सकता है कि उनके यहाँ प्रकृति और पुरुष एकात्म हैं---समान संवेदनाओं से आंदोलित, समानभागी, समानभोगी, एक ही अभिलाषा के दो रूप, एक ही उत्कंठा, एक ही प्रेरणा, एक ही मनीषा, एक ही चेतना, एक ही सिसृक्षा की दो स्फूर्तियाँ।[53] प्रकृति के साथ मनुष्य के सम्बन्ध को एक दूसरे स्तर पर सागर तट जैसी कविताएँ सन्धान करती हैं। यह कविता वर्षा के बाद के सागर-तट का बिम्ब सामने लाती हैं।कविता के आरम्भ एवं अंत में क्रमशः तीन व चार पंक्तियाँ उद्धरण के शक्ल में रखी गई है:

यह समंदर की पछाड़

तोड़ती है हाड़ तक का

अति कठोर पहाड़

यह समंदर की पछाड़

समंदर की पछाड़ तट के अंतिम कठोर पहाड़ जैसे हाड़ को भी तोड़ डालती है यानि समंदर की लहरे इतनी आक्रामक है।

कविता का आरम्भ काव्य-नायक के इस वक्तव्य से होता है:

पी गया हूँ दृश्य वर्षा का:

हर्ष बादल का

हृदय में भरकर हुआ हूँ हवा से हल्का।

वर्षा का दृश्य पीकर तथा बादल का हर्ष हृदय में भरकर काव्य-नायक हवा सा हल्का हो गया है। अब वह लहरों को देखता है जो धुन रही थी सर

व्यर्थ व्याकुल मत्त लहरें

वहीं आ आकर

जहाँ था मैं खड़ा

मौन

आगे काव्य-नायक कहता है कि ये लहरें उसी तरह अपना सर धुन रही थी मानों वे समय के आघात से जर्जर खड़ी दीवारें जैसे एक के बाद एक सहसा गिरने लगें।

अगले चरण में लहरों का एक दूसरा बिंब आता है: चांदनी की चंचल उंगलियों द्वारा क्रोशिए से फेन का झालर एवं बेल बनने लगना। यह एक अछूता बिंब है। फिर लहरों का एक गत्यात्मक बिंब लाया गया है:

पंक्तियों में टूटती गिरतीं

चांदनी में लोटती लहरें

मछलियों सी बिछल पड़ती तड़पती लहरें

बार-बार

और अंत में, एक और अतिविशिष्ट बिंब को नियोजित किया गया है: *स्वप्न में रोंदी हुई सी विकल सिकता/पुतलियों सी मूंद लेती/ आंख।*

लहरों के गुजरने के बाद तट का चित्रण कवि यह कहकर करता है कि स्वप्न में रौंदे हुए रेत मानों पुतलियाँ है जिसे आंख मूंद लेती है। क्या यह प्रकृति का सामान्य सा हाय अपने प्रतीकार्थ में कालचक्र और मानव-नियति के संबंध को नहीं दर्शाता है?

आलोचक नरेन्द्र वशिष्ट ने इस कविता पर टेनीसन की प्रसिद्ध कविता *ब्रेक ब्रेक, ब्रेक* का स्पष्ट प्रभाव लक्षित किया है।[54] उनके अनुसार दोनों ही कविताओं के आरम्भ में चट्टान पर पछाड़ खाती हुई लहरों का बिंब है। साथ ही दोनों की विषय वस्तु समान है- आदमी की हर्ष की आकांक्षा और समय द्वारा उसे खत्म करने की कोशिश।इस कविता की संरचना चक्राकार है- *यह समंदर की पछाड़* से आरम्भ होकर *यह समंदर की पछाड़* तक। आकस्मिक नहीं कि अंत में पूर्णविराम नहीं दिया गया है जिससे चक्र के गतिमान बने रहने का भाव संकेतित होता है। काल की इस शाश्वत उपस्थिति के बीच *समंदर की पछाड़* और इसको देखता काव्य-नायक, प्रकृति की एक अनोखी लीला जान पड़ती है।

यह सच है कि मनुष्य का प्रकृति के साथ साहचर्य और परिणामतः पूरे विश्व से अन्तरंगता की भावना ही उसमें सौंदर्यगत आनन्द की सृष्टि करता है। एक स्थल पर शमशेर कहते हैं: *हम एक साथ उषा के मधुर अधर बन उठे/सुलग उठे हैं/सब एक साथ ढाई अबर धड़कनों में बज उठे हैं/सिम्फोनिक आनन्द की तरह*(अमन का राग) यह अमन का राग है जिसके मूल में शमशेर का मानव प्रेम है। यह मानव-प्रेम कोई अमूर्त या विचारधारात्मक संकल्पन नहीं है बल्कि उनके प्रकृति-प्रेम की ही स्वाभाविक फलश्रुति है। कविता का आरम्भ ही इन पंक्तियों से किया गया है:

सच्चाइयाँ

जो गंगा के गोमुख से मोती की तरह बिखरती रहती हैं

हिमालय की बर्फीली चोटी पर चांदनी के उन्मुक्त नाचते

परों में झिलमिलाती रहती हैं

जो एक हजार रंगों के मोतियों का खिलखिलाता समंदर है
उमंगों से भरी फूलों की जवान कश्तियाँ
कि बसन्त के नए प्रभात सागर में छोड़ दी गई हैं।

(अम् न का राग)

मानव-प्रेम का एक पहलू शमशेर की उन कविताओं में व्यंजित हुआ है जहाँ *एक आदमी दो पहाड़ों को कुहनियों से ठेलता/पूरब से पश्चिम को एक कदम से नापता/बढ़ रहा है*।मनुष्य की जिजीविषा का एक आयाम वहाँ भी उद्‌घाटित हुआ है जहाँ शमशेर ने विभिन्न व्यक्तियों पर कविताएँ लिखी हैं। इस संदर्भ में मुक्तिबोध, मोहन राकेश, भुवनेश्वर, काजी नजरूल इस्लाम, नेरूदा, कामरेड रुद्रदत्त भारद्वाज, कामरेड नागेन्द्र सकलानी, शशि बकाया, कल्याणी बाई सैयद, शुभद्राकुमारी चैहान पर लिखी कविताएँ दृष्टव्य हैं। इन कविताओं में जीवन के प्रति निष्ठा एवं अदम्य कर्म की प्रेरणा अभिव्यंजित हुई है, जो कवि के मनुष्य मात्र के प्रति प्रेम को दर्शाती है।

शमशेर की कुछ कविताएँ ऐसी हैं जिनमें आज के युद्ध पीड़ित युग के लिए शांति की आवश्यकता पर जोर दिया गया है। ये कविताएँ भी अनन्त मानव प्रेम की कविताएँ ठहरती हैं। ली तिएन मिन की *शांति के ही लिए* में शमशेर कहते हैं: कोई भी हो तुम/मर्द या औरत/बूढ़े या बच्चे,मजदूर, किसान,सिपाही, विद्यार्थी,कि व्यापारी,कोई भी फर्क इससे नहीं पड़ता/कि तुम्हारे राजनीतिक विश्वास क्या हैं/या तुम किस धर्म को अपनाये हुए हो/अगर तुमसे पूछा जाय कि/सबसे बुनियादी वह पहली चीज कौन-सी है/कि मानव-मात्र के लिए जिसका होना आवश्यक है,तो एक ही जवाब होगा तुम्हारा:एकदम पहली ही बार,फिर दूसरी बार भी और अंतिम बार भी/यही एक जवाबः-/शांति! (शांति के ही लिए)

काव्य-संवेदना:सामाजिक एवं यथार्थ चेतना

शमशेर ने व्यक्तिगत अनुभूतियों या व्यक्तिगत परिवेश से हटकर बहुत सारी ऐसी कविताएँ लिखी हैं जिनमें समसामयिक समाज की चिंताओं एवं पीड़ाओं

का चित्रण हुआ है। यह नहीं कि व्यक्तिगत परिवेश और सामाजिक परिवेश का कोई आत्यंतिक विभाजन संभव है बल्कि कहने का तात्पर्य यह है कि शमशेर ने उन विशिष्ट शैली की कविताओं (जिनसे उनकी पहचान की जाती है) के अतिरिक्त सामान्य अनुभूति वाली यथार्थवादी कविताएँ भी लिखी हैं। वैसे यह एक गंभीर विवाद का विषय है कि क्या व्यक्तिगत अनुभूति या व्यक्तिगत परिवेश वाली कविताएँ सामाजिक या यथार्थवादी नहीं होती? क्या आत्मनिष्ठता सामाजिकता के अनिवार्यतः विरोधी होती है? इस संदर्भ में फ्रेंकफर्ट विचारक अर्डोनो के विचार ध्यान देने योग्य है। वे कहते हैं कि "कला की अन्तर्वस्तु को सामाजिक यथार्थ की तरह यथार्थ नहीं माना जा सकता। कला का सौंदर्य ही यह है कि वास्तविकता की नकल करने के बजाय उसका सार एवं बिम्ब प्रस्तुत करता है। कोई वस्तु जब आत्मनिष्ठ होकर बिम्ब में ढलती है तब रैकरण की जकड़बंदी एवं विलग्न संसार के कारावास से उसे मुक्ति मिलती है। आत्मनिष्ठ विषय (आत्म में जज्ब विषय) और वास्तविक विषय (बाहरी दुनिया का गैर-आत्मनिष्ठ विषय) के बीच जो अन्तर्विरोध उत्पन्न होता है वही किसी कलाकृति को ऐसा अद्वितीय स्पेस प्रदान करता है जहाँ से वह वास्तविक यथार्थ की आलोचना कर सकता है।" [55] लेकिन हिन्दी आलोचना संसार में **यथार्थवाद** की ऐसी रूढ़ अवधारणा विकसित हुई कि हर उस रचना को असामाजिक माना गया जिसमें यथार्थ का प्रतिनिधिक रूप में चित्रण न किया गया हो। हिन्दी में यथार्थवाद की यह अवधारणा इतने विकट रूप में मौजूद थी कि स्वयं कवि भी अपनी तथाकथित व्यक्तिवादी रचनाओं को असामाजिक मानने के लिए बाध्य हुए। खुद शमशेर अपने तीसरे काव्य-संकलन *चुका भी हूँ मैं नहीं* के आभार ज्ञापन में लिखा: "अपनी काव्य-कृतियाँ मुझे दरअसल सामाजिक दृष्टि से कुछ बहुत मूल्यवान नहीं लगती। उनकी वास्तविक सामाजिक उपयोगिता मेरे लिए प्रश्न-चिन्ह् सा ही रही है, कितना ही धुंधला सही।" [56] स्पष्ट है कि यहाँ कवि खुद अपनी रचनाओं का मूल्याँकन उसी यथार्थवादी प्रतिमान से कर रहा है जिसके बारे में डा. मैनेजर पाण्डेय का कहना है कि, "यह विचारणीय सवाल है कि क्या यथार्थवाद की अवधारणा की मदद से कविता की सार्थक आलोचना हो सकती है। वर्णनात्मक और कथात्मक कविताओं के प्रसंग में यथार्थवाद भले ही कुछ उपयोगी हो, लेकिन प्रगीत और प्रगीतात्मक संरचना वाली कविताओं की व्याख्या में यथार्थवाद

बहुत सहायक नहीं होगा। अगर प्रगीत भी रोमांटिक, बिम्बाश्रित, प्रतीक निर्भर और अत्यंत आत्मपरक हो तो यथार्थवाद वैसे ही दुर्बल और असहाय सिद्ध होगा जैसे महाभारत के नायक अर्जुन का गाण्डीव जनजातियों के सामने व्यर्थ साबित हुआ था। शमशेर बहादुर सिंह की अधिकांश कविताओं के सामने यथार्थवाद निरर्थक साबित होगा।[57] हिन्दी आलोचना में यह धारणा प्रायः रूढ़ हो चुकी है कि राजनैतिक-सामाजिक यथार्थ का चित्रण ही प्रगतिशीलता है। कला की दुनिया में प्रगतिशीलता, यथार्थ, यथार्थवाद आदि की प्रकृति एवं स्वरूप पर लम्बी एवं गंभीर बहसें हुई हैं। जिसकी गूंजें कभी-कभार हिन्दी की सैद्धांतिक आलोचना में सुनाई भी पड़ जाती हैं, लेकिन व्यावहारिक आलोचना में अब भी ज़्दानोव का यथार्थवाद ही अंतिम एवं प्रामाणिक सत्य के रूप में स्थापित है। इस अवधारणा का हिन्दी में एक समय इतना दबदबा रहा है कि खुद कवि भी अपनी तथाकथित गैर-यथार्थवादी रचनाओं को सामाजिक दृष्टि से मूल्यहीन मानने के लिए बाध्य हुए।अतः शमशेर के मूल्याँकन के पहले यह जरूरी है कि इन प्रश्नों पर विचार कर लिया जाय:

1. कला और यथार्थ के बीच कैसा संबंध होता है?

2. रैकरण के इस युग में क्या आत्मनिष्ठता सामाजिकता के विरोध में होती है?

3. कला का सामाजिक मूल्य और कलाकार की प्रतिबद्धता को निर्धारित करने का क्या प्रतिमान हो?

इस संदर्भ में फ्रैंकफर्ट स्कूल की कुछ मान्यताएँ विचारणीय हैं।

एडोर्नो के अनुसार कला की अन्तर्वस्तु को सामाजिक यथार्थ की तरह यथार्थ नहीं माना जा सकता। कला का सौंदर्य ही यह है कि वह वास्तविकता की नकल करने के बजाय उसका सार एवं बिंब प्रस्तुत करता है। कोई वस्तु जब आत्मगत होकर बिंब में ढलती है तब रैकरण की जकड़बंदी एवं विलग्न संसार के कारावास से उसे मुक्ति मिलती है। आत्मगत विषय (आत्मा में जज्ब विषय) और वास्तविक विषय (बाहरी दुनिया का गैर-आत्मगत विषय) के बीच जो अन्तर्विरोध उत्पन्न होता है वही किसी कलाकृति को ऐसा अद्वितीय स्पेस प्रदान करता है जहाँ से वह वास्तविक यथार्थ की आलोचना कर सकता है।[58]

फ्रेंकफर्ट स्कूल के दूसरे महत्त्वपूर्ण चिंतक हर्बट मार्कुस कहते हैं कि आत्मनिष्ठता की आन्तरिकता को स्वीकार कर लेने पर व्यक्ति विनिमय संबंध और विनिमय मूल्य के जाल से बाहर आ जाता है और बुर्जुआ समाज के यथार्थ से अपने को काटकर अस्तित्व के दूसरे आयाम में प्रवेश पा जाता है। वस्तुतः यथार्थ से यह पलायन उसे एक ऐसे अनुभव की ओर ले जाता है जो मौजूदा वास्तविक बुर्जुआ मूल्यों को नष्ट करने में एक शक्तिशाली ताकत बन सकती है, और बनती है।[59] साहित्य में प्रतिबद्धता के प्रश्न पर वाल्टर बेंजामिन ने अपने प्रसिद्ध लेख *लेखक उत्पादक के रूप में* में नये सिरे से विचार किया है। बेंजामिन के इस लेख की मौलिकता इस बात में निहित है कि उन्होंने मार्क्सवाद की क्रांति संबंधी मूल प्रपत्ति को हू-ब-हू कला के क्षेत्र पर लागू किया। मार्क्सवाद के अनुसार उत्पादन प्रणालियाँ अपने विकास के साथ-साथ उत्पादन के कुछ विशिष्ट सामाजिक संबंधों को भी निर्मित करती हैं। जब उत्पादन शक्तियों और उत्पादन संबंधों के बीच आपसी अन्तर्विरोध उत्पन्न होता है तो यथास्थिति का टूटना आरम्भ हो जाता है। बेंजामिन के अनुसार कला उत्पादन है और कलाकार उत्पादक इसलिए एक क्रांतिकारी कलाकार को कलात्मक उत्पादन की मौजूदा प्रणालियों को बिना आलोचना के स्वीकार कर लेने के बजाय इन कलात्मक उत्पादन की प्रणालियों को विकसित एवं क्रांतिधर्मी बनाना चाहिए। ऐसा करने पर वह कलाकार और पाठक के बीच नये सामाजिक संबंधों को उत्पन्न करता है। कहने का तात्पर्य यह है कि नये साहित्यिक रूपों का अन्वेषण नये सामाजिक संबंधों की खोज का परिणाम है। आगे बेंजामिन ने लिखा है कि प्रतिबद्धता का मतलब मौजूदा कलात्क माध्यमों के सहारे किसी क्रांतिकारी संदेश को सम्प्रेषित करना भर नहीं है बल्कि प्रतिबद्धता का मतलब उन कलात्मक माध्यमों को ही क्रांतिकारी बनाना हैं। प्रतिबद्धता का प्रश्न रचना में कोई सही राजनैतिक विचारधारा को सम्प्रेषित करने से सम्बद्ध नहीं है बल्कि किसी रचनाकार की प्रतिबद्धता इस बात से निश्चित होती है कि उसने किस हद तक उन कलात्मक रूपों को पुनर्निमित किया जिससे रचनाकार और पाठक की पारम्परिक श्रेणीबद्धता टूटती है। बेंजामिन ने इसी आधार पर ब्रेख्त के *अलगाव-प्रभाव* के तकनीक को युगांतरकारी माना था क्योंकि ब्रेख्त के नाटकों में दर्शक और रचनाकार दोनों सहयोगी नाटककार की भूमिका में होते हैं।[60] आधुनिक (छायावादोत्तर) हिन्दी

कविता पर अगर दृष्टि डालें तो शमशेर और मुक्तिबोध सिर्फ ये ही दो कवि ऐसे दिखाई देते हैं जिन्होंने मौजूदा कलात्मक माध्यमों को सही मायने में क्रांतिकारी बनाया। मुक्तिबोध ने फैंटेसी के सहारे और शमशेर ने अपने विशिष्ट अवबोध एवं *टूटी हुई बिखरी हुई* काव्य संरचना के सहारे कविता के ढांचे को व्यापक रूप से परिवर्तित किया जिससे रचना और पाठक का एकतरफा संबंध टूटकर सच्चे अर्थों में दोनों के बीच एक द्वंद्वात्मक संबंध विकसित हुआ। शमशेर और मुक्तिबोध की कविताओं को पढ़ते हुए पाठक को हमेशा ऐसा महसूस होता है कि वह कोई ऐसी कृति का साक्षात्कार नहीं कर रहा है जो बंद और अंतिम है बल्कि कविता उसके सामने अपने विशिष्ट फार्म की वजह से एक अनुभव, स्वप्न या जीवित विचार के रूप में घटित होती है जिसकी संगति या असंगति पाठक को अपने निजी अनुभव संसार में खोजनी पड़ती है। खोज की यह प्रक्रिया जटिल होती है क्योंकि पाठक के यथार्थ में ऐसी कविताएँ कहीं भी खपती नहीं है बल्कि वे कसी भी तरह के अन्तःग्रंथन का विरोध करती है। जाहिर है इससे पाठक की पारंपरिक स्थिति भी बदल जाती है। अब वह रचना का सिर्फ ग्राहक नहीं है बल्कि उका सर्जक भी है--- कवि का सहयोगी सर्जक।

शमशेर की आधी से अधिक ऐसी कविताएँ हैं जिनमें उनका बिल्कुल निजी, आत्मपरक संसार अभिव्यक्त हुआ है लेकिन ऐसी भी कविताओं की संख्या कम नहीं है जिसमें देश-प्रेम, आजादी के समय संघर्ष की कुछ महत्त्वपूर्ण घटनाएँ, शहीदों को श्रद्धांजलि, किसान-मजदूर एवं मध्य वर्ग की स्थिति का चित्रण, साम्प्रदायिकता विरोध, पूंजीवादी समाज की मानव-विरोधी तस्वीर तथा समाजवादी समाज की स्थापना की आवश्यकता आदि विषयों को उठाया गया है। प्रतिबद्ध कही जाने वाली इन यर्थाथवादी कविताओं की एक विशेषता यह है कि कवि इन कविताओं का शिल्प विषयानुरूप **यथार्थवादी** न रखकर अपनी आत्मपरक कविताओं की ही तरह **गैर यथार्थवादी व प्रयोगवादी** रहा है। कामरेड रूद्रदत्त भारद्वाज की शहादत पहली बरसी पर लिखी कविता का आरम्भ यूं होता है: वह हंसी का फूल/उषा का हृदय/बस गया है याद में मानों/अहर्निश/सांस में एक सूर्योदय हो! और ग्वालियर की खूनी शाम का भाव-चित्र यह हैःयह शाम है/कि आसमान खेत है पके हुए अनाज का।/ लपक उठी लहू-भरी दरातियाँ कि आग हैः धुंआ धुंआ/सुलग रहा/ग्वालियर के मजूर का

हृदय/ (यह शाम है) स्पष्ट है कि शमशेर कविता के यथार्थवादी अन्तर्वस्तु के अनुरूप यथार्थवादी रूप के तर्क को यहाँ स्वीकार नहीं कर रहे।वैसे यह भी चिंतनीय है कि हमारा जो अधिकांश यथार्थवादी साहित्य है वह अपने अन्तर्वस्तु में लाख क्रांतिकारी होने के बावजूद अभिग्रहण के स्तर पर क्यों इतना स्वीकारवादी साबित होता है, जो पाठकीय यथास्थिति को कहीं से भी चोट नहीं पहुँचाता। इस संदर्भ में ब्रेख्त के इस कथन को ध्यान देने की जरूरत है कि - साहित्य के फार्म को यथार्थ के मेल में होना चाहिए न कि सौंदर्यशास्त्र के मेल में- चाहे वह सौंदर्यशास्त्र, यथार्थवादी ही क्यों न हो।[61]

वैसे शमशेर ने ऐसी भी कविताएँ लिखी है जिसमें उन्होंने यह तर्क स्वीकार भी किया है। ऐसी कविताओं में *फिर वह एक हिलोर उठी* (1940) *भारत की आरती*(1947) *बात बोलेगी* (1945) *वाम वाम वाम दिशा* (संभवतः 50) *अमन का राग* (52) *सत्यमेव जयते* (1962) का नाम लिया जा सकता है। इसके अलावा *बात बोलेगी* संग्रह के *हैवां ही सही* खण्ड की सभी रचनाएँ भी इसमें शामिल की जा सकती हैं। शमशेर जब गजल लिखते हैं तो उर्दू की परम्परा से बंधकर लिखते हैं- वहाँ वे प्रयोग नहीं करते और सम्प्रेषण को सर्वाधिक तवज्जो देते हैं: *यह क्या सुना है मैंने कि दो रुपये सर है आज!!/कुछ शहर बम्बई की जबानी खबर है आज! बीहड़ वनों में डाल दिया है पड़ाव और कहते हैं आप, खत्म हमारा सफर है आज!!* (यह क्या सुना है मैंने) इसी प्रकार 1980 में मुरादाबाद के दंगे पर शमशेर अपनी एक रूबाई में कहते हैं: *वह काम मुरादाबाद में हम कर आए/दुनिया में ऊंचा अपना परचम कर जाए/बच्चों की, जवानों की उम्मीदों की वो ईद/उस ईद का हम जा के मातम कर आए।* (भारत देश की ईद)

शमशेर अपने परिवेश के प्रति बेहद संवेदनशील एवं जागरुक हैं इसलिए उन्हें हर राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय समस्याएँ बेचैन करती हैं- चाहे वह अफ्रीका में गोरे-कालों का संघर्ष हो (अफ्रीका) या भारत-चीन युद्ध हो (सत्यमेव जयते) या बंगाल का अकाल हो (अकाल) या कश्मीर में देशी राज परिषद या निजामशाही का अत्याचार (निजामशाही) या ईरान-इराक युद्ध और अफगानिस्तान की आंतरिक समस्याएँ (ईरान और अफगानिस्तान) - कवि का

हर जगह एक मानवीय रूख दिखाई पड़ता है। अपनी एक कविता में वे कहते हैं:

ये पूरब-पश्चिम मेरी आत्मा के ताने-बाने हैं

मैंने एशिया की सतरंगी किरनों को अपनी दिशाओं के गिर्द

लपेट लिया है

और मैं योरप और अमरीका की नर्म आंच की धूप छांव पर

बहुत हौले-हौले नाच रहा हूँ

सब संस्कृतियाँ मेरे सरगम में विभोर हैं

क्योंकि मैं हृदय की सच्ची सुख शांति का राग हूँ

बहुत आदिम बहुत अभिनव।

(अमन का राग)

कवि शमशेर को सही मायने में एक अंतर्राष्ट्रीय मानवतावादी कहा जा सकता है।

*** *** ***

कवि शमशेर:शिल्प:काव्य-भाषा

शमशेर ने जब कविताएँ लिखनी आरम्भ की, हिन्दी में वह छायावाद का युग था। छायावादी कविताओं में सांस्कृतिक पुनर्जागरण की सर्वव्यापी गूंज की वजह से संस्कृत के तत्सम शब्दों का बाहुल्य था और छायावादी कवियों के बारे में यह प्रसिद्ध था कि वे वाक्य लिखने के बजाय शब्द लिखते थे। सन् 1933 में शमशेर इस प्रकार की पंक्तियाँ लिख रहे थे: *आर्य शौर्य धृति, बौद्ध शांति धुति,भवन कला स्मिति, प्राच्य कर्म रति,अमर अमित प्रतिभायुत भारत/चिर रहस्य, चिर ज्ञाता!* (मैं भारत गुण-गौरव गाता) काव्य-भाषा का यह रूप शमशेर के उस दौर की प्रायः सभी कविताओं में दिखाई पड़ता है। इस काव्य-भाषा में न सिर्फ संस्कृत की सामासिक शब्दावलियों का प्रयोग हुआ है बल्कि क्रियापदों, विभक्तियों एवं अव्ययों का प्रायः अभाव है, जिससे पूरी की

पूरी पंक्ति एक शब्द की तरह दिखाई पड़ती है। इसके विपरीत उर्दू काव्य-भाषा की प्रकृति है जो अरबी-फारसी बहुल शब्दावली के बावजूद व्याकरणिक गठन एवं मुहावरे में बोलचाल से जुड़ी हुई है। यही वजह है कि इसमें पूरा वाक्य लिखने की परम्परा है। शमशेर उन दिनों गजलों के अलावा ऐसी पंक्तियाँ लिख रहे थे *मर्कज-दर्दे-जिगर लौट के फिर आयेगा/वरना मरना ही जिसे होगा..../- देख वो /मर्कजे-दर्दे-जिगर/लौट के फिर लाया हयात/कवी करने जजबात,जिनसे फिर मौत ने मुंह की खायी!* (मर्कज) लेकिन जल्द ही इन दोनों काव्य-भाषाओं (हिन्दी-उर्दू) को बरतते हुए शमशेर ने इनकी खूबियों-खामियों को समझा और कालान्तर में इस सृजनात्मक स्तर पर मिलाने की कोशिश की। इस कोशिश की पहली परिणति के रूप में *फिर भी क्यों* (1938) शीर्षक कविता को देखा जा सकता है। कविता का आरम्भिक अंश हैः *फिर भी क्यों मुझको तुम अपने बादल में घेरे लेती हो/मैं निगाह बन गया स्वयं/जिसमें तुम आँज गयीं अपना सुर्मयी सांवलापन हो।/तुम छोटा-सा हो ताल, घिरा फैलाव, लहर हलकी-सी,जिसके सीने पर ठहर शाम/कुछ अपना देख रही है उसके अंदर,वह अंधियाला....* इस कविता को पढ़ते हुए हिन्दू-उर्दू काव्य-भाषा और उसकी विशेषताओं की ओर, अलग से ध्यान नहीं जाता, क्योंकि वे अलग हैं नहीं बल्कि एक रासायनिक प्रक्रिया में एक हो गये हैं। यहाँ बगैर हिन्दी की बिम्बधर्मिता को खोये बगैर अरबी-फारसी बहुल शब्दों के इस्तेमाल के उर्दू की मिठास, उसकी लोच एवं लय को प्राप्त कर लिया गया है। यही वह भाषा है जिससे शमशेर की काव्य-भाषा की पहचान बनी और जिसमें *उन्होंने टूटी हुई बिखरी हुई, अमन का राग, आओ, एक नीला दरिया, सौंदर्य, प्रेयसी,* जैसी अद्वितीय कृतियों की रचना की।

कविता में शब्द-संवेदना का एक विशिष्ट महत्त्व होता है। कहा भी जाता है कि कविता में पर्यायवाची शब्द नहीं होते। शमशेर की शब्द-साधना प्रसिद्ध हैः वहाँ एक-एक शब्द एक-एक भाव-विश्व की खिड़कियाँ हैं और शब्दों के द्वारे जो ध्वनि-प्रवाह की सृष्टि की गयी है, वह अद्वितीय है। *ये लहरें घेर लेती हैं* की प्रारम्भिक प्रक्तियाँ हैं: *ये लहरें.../उभरकर अर्द्ध द्वितीया/टूट जाता है....*इस कविता में ध्वनि की छोटी-छोटी इकाईयाँ हैं जो लहरों के लय को मूर्त करती हैं- ये लहरें घेर लेती हैं के बाद इसका आवर्तन इसके अग्रसर होने एवं आरोह अवरोह के लय को संकेतित करता है। फिर *उभरकर* क्रियापद आरोह के

उठान को *अर्द्ध* तक पहुँचाकर एक गंभीरता प्रदान कर देता है जहाँ से अवरोह में *द्वितीया/टूट जाता है* एक कारुणिक शिथिलता का बोध लिए है। शब्द का ध्वनि-प्रवाह यहाँ कविता के मूर्ति-विधान में सहायक है। शमशेर पंक्तियों और शब्दों के बीच अन्तराल का भी बहुत ही सार्थक एवं अर्थगर्भी प्रयोग करते हैं। ऊपर उद्धृत कविता के अतिरिक्त उदाहरणस्वरूप *शाम और रातः तीन स्टैंजा* के प्रथम अंश को देखें: *तकिये पे/सुर्ख गुलाब मैंने/समझे.../दो/सेब मैंने समझे दो..../क्यों ...वो तो....वो तो/दो दिल थे।* तीसरी पंक्ति में *समझे* के बाद लोप चिह्नों का प्रयोग हुआ है जो यह संकेतित करता है कि वह *समझना* पूरी तौर से नहीं हुआ है बल्कि समझने की प्रक्रिया चल ही रही है... फिर पांचवीं पंक्ति में भी *सेब मैंने समझे दो* के बाद जो लोप चिह्नों की बिन्दुओं का प्रयोग हुआ है वह भी किसी अंतिम निष्कर्ष पर पहुँच जाने के पहले की अनिश्चितता को संकेतित करता है, जो अगली पंक्ति *क्यों* के आगे प्रयुक्त प्रश्न-चिन्ह् से प्रमाणित होता है। अगली पंक्ति में *वो तो* और *वो तो* के बीच जो अंतराल है *वह दो दिल थे* जैसे वाक्य कहने के पहले की स्वाभाविक झिझक और हिचकिचाहट को व्यंजित करने के लिए है।

शमशेर कभी-कभी पंक्तियों में दो शब्दों के बीच अंतराल का प्रयोग बलाघात के लिए भी करते हैं जैसेः

चिकनी चांदी सी माटी

वह देह धूप में गीली

लेटा है हंसती-सी।

(चिकनी चांदी सी माटी)

यहाँ दूसरी पंक्ति में कवि *वह देह, धूप में* और *गीली* को अलग-अलग रेखांकित करना चाहता है इसलिए वह इन तीनों के बीच अंतराल का प्रयोग करता है। कवि इन तीनों पदों को अलग-अलग पंक्तियों में भी लिख सकता था लेकिन उससे *देह, धूप और गीलेपन* के अविच्छिन्न संबंध को उजागर नहीं किया जा सकता था। तीसरी पंक्ति में *लेटी है* के बाद अंतराल का प्रयोग नहीं किया जाता तो जोर *हंसती-सी* पर होता जिससे *लेटी है* की अर्थछाया पड़ जाती।

शमशेर की काव्य-भाषा अपने सर्वोत्तम रूप में बिम्बधर्मी है। हिन्दी में बिम्ब एवं जापानी हाइकू की चर्चा छठवें दशक के आरम्भ हुई थी लेकिन शमशेर 1939 में ही ऐसी कविता लिख चुके थे: *सूना-सूना पथ है, उदास झरना/एक धुंधली बादल-रेखा पर टिका हुआ आसमान/जहाँ वह काली युवती/हंसी थी।* (सूना सूना पथ है, उदास झरना) इसी शैली की उनकी *सुबह* शीर्षक कविता एवं कई काव्याँश हैं।

शमशेर **मुक्त आसंग एवं चेतना-प्रवाह** शैली के भी कवि हैं। मुक्त-आसंग पद्धति में किसी वस्तु के सर्वांग-संपूर्ण चित्रण के लिए भिन्न-भिन्न एवं ऊपरी तौर से असम्बद्ध वस्तु एवं स्थितियों को सामने लाया जाता है। इसी प्रकार चेतना प्रवाह शैली में चरित्र के मानस में प्रवाहमान बाह्रतः अतर्कपूर्ण और खण्डित स्मृति-बिम्बों का अंकन होता है। अन्तस्थ एकालाप की यह पद्धति *बाढ़* (1948), *टूटी हुई बिखरी हुई, सारनाथ की एक शाम, अमन का राग, सावन, पिकासोई कला* जैसी कविताओं में प्रयुक्त हुई हैं।

<u>काव्य-शिल्प:प्रतीक योजना</u>

भाषा में प्रतीकों का प्रयोग उतना ही पुराना है जितना कि स्वयं भाषा। आश्चर्य नहीं कि कुछ लोगों ने पूरी भाषा के विकास को प्रतीकों का ही विकास माना है। लेकिन काव्य-भाषा के संदर्भ में जब प्रतीक-योजना की बात होती है तो उसका आकलन भाषा प्रयोग की एक विशिष्ट विधि के रूप में होता है। काव्य-भाषा की सृजनात्मकता के मूल में सादृश्य-विधान एवं अप्रस्तुत-योजना का प्रमुख स्थान है और सादृश्य-विधान एवं अप्रस्तुत-योजना के मूल में उपमा, रूपक, बिम्ब एवं प्रतीक होता है।

केदारनाथ सिंह के अनुसार "प्रतीक एक प्रकार के रूढ़ उपमान का ही दूसरा नाम है, जब उपमान स्वतंत्र न रहकर पदार्थ विशेष के लिए रूढ़ हो जाता है तो वह प्रतीक बन जाता है। इस प्रकार प्रत्येक प्रतीक अपने मूल रूप में उपमान होता है, धीरे-धीरे उसका बिम्ब रूप या चित्र-रूप संचरणशील न रहकर स्थिर या अचल हो जाता है। अतः प्रतीक एक प्रकार का अचल बिम्ब है जिसके आयाम सिमटकर अपने भीतर बंद हो जाते हैं।[62] शमशेर के अधिकांश प्रतीक अन्य काव्य-प्रतीकों की तरह प्रकृति से ही लिए गए हैं। सूर्य, चांद, सागर, लहरें, मछलियाँ, फूल, तारा, बादल, उषा, धूप, शाम, गुलाब, दरिया,

सांप, कैक्टस, आदि प्रतीकों का शमशेर ने अपने काव्य में पारम्परिक एवं वैयक्तिक दोनों ही रूपों में प्रयोग किया है। महादेवी वर्मा बादल का प्रतीक *स्नेह* को व्यंजित करने के लिए लाती हैं और सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला इसे क्रांति या परिवर्तन के संवाहक का प्रतीक बना देते हैं। शमशेर बादल का इन दोनों ही रूपों में प्रतीकवत प्रयोग करते हैं: *फिर भी क्यों मुझको तुम अपने बादल में घेरे लेती हो*(फिर भी क्यों) या *मौन राग ही अंतिम लय है/दुनियाओं का-यह विश्वास/ खींच रहे हैं गहरे बादल/धीरे-धीरे मेरे उर में* (मौन राग ही) यहाँ बादल स्नेह का प्रतीक है। लेकिन बादल का क्रांति या विप्लव के प्रतीक रूप में प्रयोग इन पंक्तियों में दृष्टव्य है: *आयेंगे ऐसे अधिकारी भी/विप्लव व्यापारी भी/ओ मेरे भोले बादल/दिखलायेगा तब तू अपना असली रूप/प्यासे कवि मन के अनुरूप।* (दुःख नहीं मिटा)

इसी प्रकार का एक अन्य प्रतीक सूर्य है जिसका प्रयोग शमशेर ने भिन्न-भिन्न अर्थों के लिए किया है। *योग* शीर्षक कविता में सूर्य जागरण का प्रतीक हैः *सूर्य मेरी पुतलियों में स्नान करता* वैसे सूर्य ज्ञान का पारम्परिक प्रतीक माना जाता है इसलिए यहाँ इस अर्थ में प्रयुक्त यह प्रतीक शमशेर का वैयक्तिक प्रतीक कहा जायेगा।एक अन्य कविता में सार्थक कर्म के प्रतीक के रूप में सूर्य का प्रयोग शमशेर करते है : *ओ हमारे सांस के सूर्य/सांस की गंगा/अनवरत बह रही है/तुम कहाँ डूबे हुए हो।* (रात्रि) सांस यहाँ जीवन का प्रतीक है। कवि कहना चाहता है कि जीवन तो अनवरत चल रहा है लेकिन जीवन में सार्थक कर्म की कमी है। *निराला के प्रति* शीर्षक कविता में शमशेर निराला को *ऋतुओं के विहंसते सूर्य* कहकर सम्बोधित करते हैं। यहाँ सूर्य जीवन-शक्ति का प्रतीक हैं। एक अन्य कविता में शमशेर कहते हैं: *सूरज/उगाया जाता/फूलों में: /यदि हम/एक साथ/हंस पड़ते*।(सूरज उगाया जाता) यहाँ सूरज उल्लास का प्रतीक है। इस प्रकार शमशेर एक ही प्रतीक को भिन्न-भिन्न संदर्भों में प्रयुक्त कर वैयक्तिक रूप से अलग-अलग अर्थ सम्प्रेषित करते हैं। इसी प्रकार *मौन* शब्द शमशेर के यहाँ कभी गहरी उदासी जन्य विवशता तो कभी आंतरिक संघर्ष के पश्चात विवश संतुलन को प्रतीकित करते हैं।

हृदय के भाव के लिए लहर एक पारम्परिक प्रतीक है, जिसका प्रयोग शमशेर भी उसी रूप में करते हैं : *उठती हैं मतवाली लहरें/काली/क्या जानूं मैं*

क्या कहती हैं/क्यों मुझको घरे रहती हैं/ये मतवाली लहरें काली-काली। (उठती हैं मतवाली) या *ये लहरें घेर लेती हैं* की लहरें। चांद सौंदर्य का एक पारम्परिक प्रतीक है और शमशेर भी उसको उसी रूप में बरतते हैं: *वह जो हुम्हारे हृदय में बज रहा है/मैं उस साज में एक चांद/देखता हूँ* (सौंदर्य) सौंदर्य का ही प्रतीक *गुलाब* शमशेर की कई कविताओं में अपने कई रंगों के साथ मौजूद है। सूर्ख, कत्थई, पीले, लाल एवं रस-भीने गुलाबों की पूरी दुनिया है जो सौंदर्य के बहुवर्णी संसार को प्रतीकित करती है। वैसे कहीं-कहीं गुलाब यौन-प्रतीक भी बनकर आया है जैसे *शाम और रातः तीन स्टैंजा* शीर्षक कविता में।

शमशेर ने सागर के प्रतीक का पारम्परिक अर्थ में- विराटता एवं जीवन की विराटता के रूप में ही किया हैः *वह सागर*

उट्ठा जो, उठा, और-और-और

पाने मुझे

(वह सागर)

या फिर

तू किस

गहरे सागर के नीचे

के गहरे सागरके नीचे का

गहरा सागर होकर

भिंच गया है।

(सारनाथ की एक शाम)

इसी प्रकार *लौट आ ओ धार* पूरी कविता ही अपनी प्रतीकात्मकता के लिए उल्लेखनीय है:

लौट आ ओ धार

टूट मत ओ सांझ के पत्थर हृदय पर

यहाँ धार समय का एवं सांझ खोये हुए उजाले यानी अतीत का प्रतीक है। काव्य-नायक समय की धार को सांझ यानी अतीत के पत्थर हृदय पर टूटने के बजाये लौट आने का आग्रह करता है क्योंकि उसे अतीत के अटल व पत्थर होने का एहसास है और यह अनुभूति स्वयं समय का है। आगे काव्य-नायक स्वयं घोषणा करता है:

मैं समय की एक लम्बी आह

मौन लंबी आह

अर्थात जो हो चुका है उसे समय भी नहीं बदल सकता- यह अनुभूति, यह विवशता की अनुभूति समय के मुंह से आह निकाल देती है और काव्य-नायक इसी *आह* की निर्मिति है। अपने अस्तित्व का, अपने होने का यह टे॰जिक बोध जितना मर्मातक है, काव्य-नायक के विनती के स्वर में उतना ही गीलापनः

लौट आ, ओ फूल की पंखड़ी

फिर

फूल में लग जा

चूमता है धूल का फूल

कोई, हाय!

फूल आकांक्षा का, संभावनाओं का प्रतीक है। धूल धूसरित स्वप्न या आकांक्षाओं को चूमता काव्य-नायक बिखरी पंखुड़ियों को फिर से फूल में लग जाने की विनती करता है। यह निरन्तर अग्रसरित समय के तीर को पीछे लौटा लाने की आकांक्षा पूरी कविता को एक कारुणिक वलय से ढक लेती है, जिसे कविता का अंतिम शब्द *हाय* पूरी अर्थवत्ता से व्यंजित करता है। कविता का छंद बोलचाल की लय पर आधारित है और कथ्य के अनुरूप जिसे विलम्बित बना कर रखा गया है। इसे चाहकर भी आप तेज-तेज नहीं पढ़ सकते। कविता की कथन भंगिमा ही ऐसी है कि वह आपको ठहर-ठहर कर, रुक-रुक कर, बलाघात एवं श्रुतिसाम्यता को ध्यान में रखकर आगे बढ़ना होता है। कविता का

लय एक उदास आदमी के स्वर को रूपायित करता है--- एक ऐसे व्यक्ति का स्वर जो असंभव की प्रार्थना करता है, यह जानते हुए भी कि यह संभव नहीं है।

उन्नीस सौ उनसट में रचित दस पंक्तियों की यह कविता *लौट आ, ओ धार* ,एक प्रार्थना है--- जीवन में जो घट चुका है, जो हो चुका है उसे अघटित, उसे अनहुआ कर देने की प्रार्थना। काव्य-नायक का समय को लौट आने की गुहार लगाना मनुष्य की आदिम आकांक्षाओं में से एक है ।यह कविता अपनी प्रतीक-योजना के लिए हिन्दी कविता में विशिष्ट मानी जाती है।

इसके अतिरिक्त भी शमशेर ने कई प्रतीकों को परम्परागत रूप में प्रयुक्त किया है जैसे उषा (आनन्द), भौंरा (प्रेमी), शाहजहाँ (उदात्त प्रेमी), शाम (नश्वरता, दुख), सांप (विकार), नाव (जीवन), पाल (जीवन का आधार), सींग और नाखून (बनैलापन) इत्यादि।

शमशेर की प्रतीक-योजना की एक विशेषता यह भी है कि शब्द पंक्ति या एक बन्द के बदले पूरी कविता की घटना या प्रसंग को प्रतीकवादियों की तरह एक प्रतीक में बदल देते हैं। उदाहरण के रूप में *बंधा होता भी, रात्रि, असम्भव* शीर्षक कविताएँ देखी जा सकती हैं।

काव्य-शिल्प:बिम्ब-विधान

किसी कलाकृति के सम्प्रेषण में और बोलचाल के सम्प्रेषण में फर्क होता है और यह फर्क मूलतः बिम्ब-विधान की वजह से होता है। जहाँ बोलचाल के सम्प्रेषण में जोर अर्थग्रहण पर होता है, वहाँ कलाकृति मूलतः बिम्बों के द्वारा सम्प्रेषित होती है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने उदाहरण दिया हैः किसी ने कहा कमल अब इस कमल पद का ग्रहण कोई इस प्रकार भी कर सकता है कि ललाई लिए हुए सफेद पंखुड़ियों और नाल आदि के सहित एक फूल का चित्र अन्तःकरण में थोड़ी देर के लिए उपस्थित हो जाय, और इस प्रकार भी कर सकता है कि चित्र उपस्थित न होकर केवल पद का अर्थमात्र समझकर काम चलाया जाए। व्यवहार में तथा शास्त्रों में इसी दूसरे प्रकार के संकेतग्रहण से काम चलता है। वहाँ एक-एक पद के वाच्यार्थ के रूप पर अड़ते-चलने की

फुरसत नहीं रहती। पर वाक्य के दृश्य-चित्रण में संकेतग्रहण पहले प्रकार का होता है। उसमें कवि का लक्ष्य बिम्ब ग्रहण कराने का रहता है, केवल अर्थग्रहण कराने का नहीं।[63] कवि का लक्ष्य बिन्दु ग्रहण कराना इसलिए भी होता है क्योंकि बिम्ब यथार्थ की बहुवर्णी छायाओं को जीवित रूप में सम्प्रेषित करने की क्षमता रखता है।

हिन्दी के प्रायः सभी आलोचकों ने शमशेर को बिम्बों का कवि माना है लेकिन शमशेर की कविताओं में बिम्बों की भूमिका हर जगह एक जैसी नहीं है। कहीं पूरी कविता को ही एक बिम्ब में ढाला गया है तो कहीं एक कविता में ही कई बिम्बों की योजना की गई है और जैसे मोतियों को धागों में पिरोकर एक माला तैयार की जाती है, कई बिम्बों को कविता के कथानक में पिरोकर एक बिम्ब माला का निर्माण किया गया है- विशेषकर यह पद्धति शमशेर अपनी लम्बी कविताओं में प्रयोग करते हैं। शमशेर की कुछ ऐसी भी कविताएँ हैं जिसमें दो या तीन बिम्ब हैं और बाकी सामान्य भाषा में चित्रण है लेकिन कविता में ये बिम्ब अपनी आंतरिक भास्वरता से सामान्य भाषा को भी आलोकित किये चलती हैं।

शमशेर की आरम्भ से ही ऐसी कविताएँ मिलती हैं जो आकार में छोटी हैं और बिम्बधर्मी हैं। *सुबह* कविता तीन पंक्तियों की हैः *जो सिकुड़ा हुआ बैठा था, वो पत्थर/सजग सा होकर पसरने लगा/आप से आप*। इसी प्रकार *घिरते आकाश को, सूना-सूना पथ है उदास झरना, चिकनी चांदी सी माटी* जैसी कविताओं में बिम्ब का वही अर्थ-संश्लेष है जिसका आदर्श जापानी हाइकू माना जाता है।

शमशेर ने अपनी कुछ लम्बी कविताओं में कथानक में पिरोयी बिम्ब मालाओं वाली पद्धति का प्रयोग किया है। ऐसी कविताओं में कई बिम्ब होने के बावजूद भावान्विति खण्डित नहीं हुई- इसका श्रेष्ठ उदाहरण उनकी *टूटी हुई बिखरी हुई* कविता है। यह कविता एक कवि की प्रेम कविता है। काव्य-नायक कवि है जो अपनी कविता के बारे में अपने विचार से कविता का आरम्भ करता है: टूटी हुई बिखरी हुई चाय/ की दली हुई पांव के नीचे/ पत्तियाँ / मेरी कविता अपनी कविता के लिए कवि यहाँ टूटी हुई बिखरी हुई, पांव के नीचे दली चाय की पत्तियों का एक अछूता उपमान लाता है। उपमान को प्रायः उपमेय को मूर्त करने का साधन माना जाता है लेकिन यहाँ यह अमूर्ततता का स्त्रोत है। चाय

की पत्तियों के प्रकमण (प्रोसेसिंग) को ध्यान में रखा जाय तो पांव के नीचे दली पत्तियाँ प्रायः दोयम दर्जे की मानी जाती है, बावजूद इसके यह पीने वालों को तरोताजा कर देने की क्षमता रखती है। कवि अपनी कविता को ऐसी ही मानता है!

कविता के बाद, काव्य-नायक अपनी खाल का बखान करता है। इसके लिए भी वह एक आश्चर्यजनक उपमान लाता है- झड़े हुए बाल, जो मैल से रूखे होकर गिर गये हैं लेकिन गर्दन से फिर भी चिपके हुए हैं: ऐसी मेरी खाल संकेत यह है कि खाल काया से अलग है, मिट्टी में मिली सी है यानी चुस्त नहीं है।

अगले बंद में काव्य-नायक अपनी आंखों के सूनेपन का इजहार करता है। सूनापन कैसा तो खाली फटे बोरे के रफू किया जा रहा है। वैसा अर्थात जिस प्रकार मरम्मत के बाद बोरे को भरकर उपयोग में लाया जा सकेगा उसी प्रकार उसकी आंखें अभी तो सूनी हैं लेकिन उसमें किसी के बस पाने की संभावना का संकेत भी है।

अगली पंक्ति में काव्य-नायक ठंड को अपनी दोस्त बताता है, जो एक मुस्कुराहट लिए हुए है लेकिन उसमें उष्मा नहीं आ सकती, तात्पर्य यह कि एक अजीव सी वीतराग-सी मनःस्थिति में वह जी रहा है। यहाँ तक कि कबूतरों की गुनगुनाई हुई गजल को भी वह समझ नहीं पाया है क्योंकि समझने के लिए जो वस्तुनिष्ठता चाहिए वह ग़ज़ल के मीठेपन, हल्केपन और उसके खफीफ होने ने हर लिया था। आसमान में गंगा की रेत आईने की तरह हिल रही है- यह बादल का एक अप्रतिम बिंब है। काव्य-नायक उसी में कीचड़ की तरह सो रहा है, यानी बादलों के साये में ही उसका निवास है और रेत-कण की तरह चमक रहा है---न जाने कहाँ। मेरी बांसूरी है एक नाव की तवार--- जिसके स्वर गीले हो गये हैं। काव्य नायक कहता है मेरा हृदय कर रहा है छप छप छप यानी हृदय नदी है और बांसुरी नाब की पतवार है। कहने का तात्पर्य यह कि काव्य-नायक एक ऐसी कैफियत से गुजर रहा है जहाँ गीले स्वरों की प्रधानता है यानी दुख के अनुभव से गुजर रहा है। आगे की पंक्तियों से स्पष्ट होता है कि यह दुख प्रेमजन्य है। वह पैदा हुआ है से लेकर चिकोटियों में बड़ा प्रेम हैं में इसी का स्पष्टीकरण है। आगे प्रेमिका के साथ काव्य-नायक के कुछ आंगिक

बिंब हैं: वह मुझ पर हंस रही है से लेकर फौव्वारे की तरह नाचो तक उद्दाम शारीरिकता के ऐसे बिंब हिंदी कविता में नितान्त दुर्लभ हैं। यहाँ मूर्त्तता को अमूर्त्तता और मूर्त्त करता है। आगे के दो बंद में काव्य-नायक अपने प्रेम की अवधारणा को स्पष्ट करता है और जिसका सूत्रीकरण इन पंक्तियों में हुआ हैः हाँ! तुम मुझसे प्रेम करो जैसे मछलियाँ लहरों से करती हैं। जिनमें वह फंसने नहीं आतीं/जैसे हवाएँ मेरे सीने से करती हैं/जिसको वह गहराई तक दबा नहीं पाती/तुम मुझसे प्रेम करो जैसे मैं तुमसे करता हूँ।

यह आधुनिक प्रेम का घोषणा पत्र है---यहाँ किसी भी प्रकार के मालिकाना हक या इदंममत्व (पजेसिबनेस) का घोर विरोध है। यह सच्चे अर्थों में, एक उन्मुक्त लोकतांत्रिक प्रेम की मांग एवं चाह है। यह एक आदर्श भी है और काव्य-नायक इसे ही अपनी जिंदगी समझता है। इसकी घोषणा वह बेहद भास्वर एवं नाटकीय अंदाज में करता है: आईनों, रोशनाई में घुल जाओं और आसमान में/ मुझे लिखो और मुझे पढ़ों / आईनों, मुस्कराओं और मुझे मार डालो। आईनों, मैं तुम्हारी जिंदगी हूँ।आईना फारसी का शब्द है जिसका एक अर्थ आदर्श होता है, काव्य-नायक इसे प्रकाश (रोशनाई) में घुलकर आसमान में मुझे लिखो और मुझे पढ़ों की मांग करता है अर्थात दिग-दिगन्त में मेरे आदर्श को घोषित कर दो। वह अपने आदर्श के लिए मर मिटने के लिए भी तैयार है, क्योंकि आदर्श ही उसकी जिंदगी है। काव्य-नायक का आदर्श के प्रति इस प्रतिबद्धता की पृष्ठभूमि में ही आगे के बारह बंद का औचित्य प्रमाणित होता है। एक फूल उषा की खिलखिलाहट पहनकर से लेकर मै तो जैसे इसी शरीर से अमर हूँ--- तुम्हारी बरकत तक काव्य-नायक अपनी प्रेम-कहानी कुछ बिम्बों कुछ प्रतीकों तथा कुछ संकेतों में प्रस्तुत करता है। कहानी मुख्तसर यह कि नायिका जो काव्य-नायक से एक फूल की तरह लिपटी थी एक जिंदा इत्रपाश बनकर बरस पड़ी थी, वह उसके याददाशत को कुछ वर्षों बाद गुनाहगार बनाकर और उसका सूद बहुत बढ़ाकर वसूल किया। संकेत यह है कि काव्य-नायक जिस प्रेम के आदर्श को जीवन-मरण का प्रश्न समझता था वह नायिका के लिए एक खुला फटा हुआ लिफाफा के अलावे कुछ नहीं था। इस पूरे प्रसंग पर, कविता के अंति दो बंद में काव्य-नायक अपनी विशेष सांकेतिक शैली में यह टिप्पणी करता है:

बहुत-से तीर बहुत-सी नावें, बहुत से पर इधर
उड़ते हुए आए घूमते हुए गुजर गए
मुझको लिए, सबके सब। तुमने समझा
कि उनमें तुम थे। नहीं, नहीं, नहीं।
उनमें कोई न था।
सिर्फ बीती हुई
अनहोनी और होनी की उदास
रंगीनियाँ थी। फकत।

तीर, नावें और पर को क्रमशः जख्म, संतरण एवं उड़ान का प्रतीक माना जा सकता है और काव्य-नायक इन तीनों ही अनुभवों के लिए नायिका को श्रेय नहीं देता और न ही उसे इसके लिए जिम्मेवार मानता है ,वह तो एक प्रकार की भवितव्यता (होनी) और अनहोनी को कारण मानता है। होनी और अनहोनी की उदास रंगीनियाँ प्रेम की ही नहीं जीवन के ट्रेजिक बोध की अभिव्यंजनाएँ हैं।

यह कविता अपनी संवेदना के लिए जितनी उल्लेखनीय है, उतनी ही अपने शिल्प के लिए। काव्य-नायक चूंकि कवि है इसलिए बोलचाल के लय को भी इतना परिष्कृत कर दिया गया है कि सूक्ष्म से सूक्ष्म मनोभावों के एक-एक रेशे को स्पंदित होते देखा जा सकता है। इस कविता की एक विशेषता यह भी है कि बिना हिन्दी काव्य-भाषा की बिंबधर्मिता खोये उर्दू काव्य-भाषा की रवानगी इसमें उपलब्ध कर ली गयी है। बिंब और प्रतीक का जैसा संयोजन इस कविता में हुआ है वह हिन्दी कविता की एक उपलब्धि है। बिंब को कथात्मक सूत्र में पिरोना एक मुश्किल कला है क्योंकि बिम्ब अपनी प्रकृति में स्थिर,गतिहीन होता है जबकि कथात्मकता निरन्तर गति की मांग करता है--- इन दोनों को संयोजित करने की कला का ही नाम फिल्म में सम्पादन (एडिटिंग) है और यह एक आश्चर्य है कि इस कविता में इस कला की बड़ी बारीक पकड़ दिखाई पड़ती है। यहाँ सी. डी. लीविस का यह कहना याद आता है कि एक कविता में बिम्ब मालाएँ भिन्न-भिन्न कोनों में रखे आइनों की

श्रृंखलाओं की तरह होती हैं और जैसे ही कथानक बढ़ता है ये उसके विभिन्न पहलुओं को कई कोणों से प्रतिबिम्बित करती हैं। लेकिन ये आइने जादुई होते हैं, ये सिर्फ कथानक को ही बिम्बित नहीं करते बल्कि उन्हें रूप और जीवन भी प्रदान करते हैं।[64]

शमशेर की बहुत सारी ऐसी कविताएँ भी हैं जिनमें कुछ बिम्ब सामान्य वर्णन की भाषा के बीच नियोजित किये गये हैं जैसे सावन, सौंदर्य, कत्थई गुलाब, रोम सागर के बीचोंबीच, दो मोती कि दो चन्द्रमा होते, माडल और आर्टिस्ट।

शमशेर ने प्रकृति के कुछ बेहद ऐन्द्रिय अछूते चाक्षुष बिम्ब निर्मित किये, जो हिन्दी कविता की एक उपलब्धि है। उषा का यह बिम्ब देखें:

प्रात नभ था बहुत नीला शंख जैसे

भोर का नभ

राख से लीपा हुआ चौका

[अभी गीला पड़ा है]

बहुत काली सिल ज़रा-से लाल केसर से

कि जैसे धुल गयी हो

स्लेट पर या लाल खड़िया चाक

मल दी हो किसी ने

नील जल में या किसी की

गौर झिलमिल देह

जैसे हिल रही हो।

(उषा)

उषा के विभिन्न रंगों की छायाओं को कवि ने जैसे चित्रकार की तूलिका से पकड़ा है। सुबह को नीला शंख कहने के पीछे सिर्फ रंगों का ही साम्य नहीं है बल्कि मांगल्य एवं ताजेपन की भी व्यंजना है। राख से लीपा हुआ गीला चैका सुबह के आकाश की निरर्भरता के साथ-साथ स्वस्तिवाचकता को भी सामने लाता है। फिर सूर्योदय के पहले की लालिमा को कवि ने *स्लेट पर लाल*

खड़िया मल दिया हो या गहरी काली सिल पर लाल केसर घुल गया हो, के बिम्ब से लालिमा के सभी सम्भाव्य वर्णों को मूर्त कर दिया है। सूर्य के पूरब दिशा में उदित होने को जैसे *आकाश के नीले जल में किसी की गौर झिलमिल देह हिल रही हो* के बिम्ब से कवि पूर्णतया उजागर करने में सफल हुआ है।

प्रकृति की तरह नारी देह के भी कई ऐन्द्रिय एवं मांसल बिम्ब शमशेर की कविताओं में बिखरे पड़े हैं। वह सलोना जिस्म का यह बिम्ब द्रष्टव्य है: *उसकी अधखुली अंगड़ाइयाँ हैं/कमल के लिपटे हुए दल/कसे भीनी गंध में बेहोश भौरे को। या प्रेयसी का यह रूपः यह पूरा/कोमल कांसे में ढला/गोलाइयों का आईना/मेरे सीने से कसकर भी/आजाद है।"*

इन बिम्बों में वस्तुगत मूर्त की अप्रस्तुत से तुलना की गई है जिससे एक ओर स्थूलता का निषेध संभव हुआ और दूसरी ओर सौंदर्य का सामान्यीकरण करने के बजाय एक अत्यंत निजी एवं विशिष्ट रूप खड़ा हो सका। मलयज का कहना सही है कि शमशेर के बिम्बों की एक विशेषता यह है कि वे चाहे किसी विचार-स्थल पर आघात न करते हों वे अनुभूति के मांसल रूप-चित्र होते हैं। यह मांसलता अवश्य ही स्थूलता से भिन्न होती है इसलिए यद्यपि उनके बिम्बों की केन्द्रीय प्रवृत्ति अमूर्तन की ओर है वे अनुभूति का सामान्यीकरण नहीं करते वरन इससे उनमें एक प्रकार की सार्वभौमता आ जाती है।[65] बिना अनुभूति का सामान्यीकरण किये सार्वभौमता ले आना ही शमशेर के बिम्बों की एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है।

रमण सिन्हा
भारतीय भाषा केंद्र
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
नयी दिल्ली ११००६७

सन्दर्भ एवं टिप्पणी

1.एम.मार्लो- पोंती,फिनोमिनालाजी आफ पर्सेप्सन,रूतलेज एंड कगाँ पाल,लंडन1986,पेज 207
2.वालेस स्टिवेंस,दि रिलेशंस बिटवीन पोयट्री एंड पेंटिंग इन जे.डी.मैक्लेशी(एडि.) पोयट्स आन पेंटर्स,यूनिवर्सिटी आफ केलिफोर्निया प्रेस,बर्कले,लास एंजिलस,लंडन,फर्स्ट पेपरबैक प्रिंटिंग 1990,पेज 112-113
3.मलयज, बात बोलेगी, पर कब? कविता का साक्षात्कार, सम्भावना प्रकाशन, हापुड़, प्रथम संस्करण 1972, पृ. 24
4.शमशेर बहादुर सिंह, मैं मेरा समय और रचना-प्रक्रिया, सापेक्ष 30, शमशेर विशेषांक, विशेष संपादक: रंजना अरगड़े, पृ. 20-21-
5.विनायक पुरोहित,आर्ट्स आफ ट्रांजिशनल इंडिया,वोल्यूम 2,पोपुलर प्रकाशन,बोम्बे,फर्स्ट पब्लिश्ड,पेज 726
6. शमशेर ने लिखा है: योरोप के जो चित्रकार थे और जो आंदोलन अतियथार्थवाद का वहाँ पर चला था, उसने बहुत गहराई से मुझको प्रभावित किया और उन रूपों को मैने अपने ढंग से कविता में पेश करने की कोशिश की। सापेक्ष वही, पृ. 21-22
7.रंजना अरगड़े (सं.),कुछ और गद्य रचनाएं, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण 1992, पृ. 47-66
8.हर्बट रीड,दि मीनिंग आफ आर्ट,रूपा पेपरबैक इंडिया,फर्स्ट पब्लिश्ड 1992,पेज 240-241
9. हर्बट रीड,दि फिलासफी आफ मोडर्न आर्ट,रूपा एंड कम्पनी,रूपा पेपरबैक्स 1992,पेज 135
10.यूरी बोरेव,एस्थेटिक्स,प्रोग्रेस पब्लिशर्स,मोस्को 1985,पेज 216
11.वही,पेज 215
12. हर्बट रीड,वही,पेज 141
13.अज्ञेय (सं.), दूसरा सप्तक,भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली छठा संस्करण 1996 पृ. 87-88 (दूसरा सप्तक की पांडुलिपि 1949 में तैयार हुई थी और प्रकाशन 1959 में)
14.मलयज (सं.) शमशेर बहादुर सिंह की कुछ गद्य रचनाएं, सम्भावना प्रकाशन, हापुड़, प्रथम संस्करण 1981, पृ. 114
15.विजय देव नारायण साही, शमशेर की काव्यानुभूति की बनावट, छठवां दशक,हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद 1987
16.अज्ञेय: अपने बारे में, आकाशवाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रकाशन वर्ष का उल्लेख नहीं, पृ. 60
17.नामवर सिंह (सं.) मलयज की डायरी, भाग-2, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2000, पृ. 445

18.नेमिचन्द्र जैन (सं.) मुक्तिबोध रचनावली, भाग-5 (शमशेर मेरी दृष्टि में) राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पहला पेपरबैक संस्करण 1984, पृ. 439
19.विक्टर इर्लिक,रशियन फोर्मलिज्म,माउटन पब्लिशर्स दे हेग,पेरिस,न्यू योर्क ,फोर्थ एडिशन 1980,पेज 76
20.साही, वही
21.जे.डी.मैक्लेशी,वही पेज तेरह
22.रमण सिन्हा, भावों के चित्रकार, शमशेर बहादुर सिंह, प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली 1996, पृ. 68
23.शमशेर बहादुर सिंह, उदिता, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 1980, पृ. 107
24.हर्बट रीड,वही,पेज 95
25.वही,पेज 92 पर उद्धृत
26 शमशेर, अमूर्त कला, कुछ और गद्य रचनाएं, वहीं, पृ. 169
27.शमशेर की काव्यानुभूति की बनावट, छठवां दशक, हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, 1987, पृ.
28.बोरिस पास्तरनाक,
29. रामस्वरूप चतुर्वेदी,नयी कविताएँ: एक साक्ष्य, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ. 88
30. यूरी वोरेव,एस्थेटिक्स,प्रोग्रेस पब्लिशर्स,मोस्को,1985,पेज 41
31. निर्मल वर्मा,ढलान से उतरते हुए, राजकमल प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 1985 पृ. 28
32. हरद्वारीलाल शर्मा, काव्यालोचना में सौंदर्य दृष्टि, साहित्य-सहकार, दिल्ली 1987 पृ. 229
33. जे.ए.कद्दन
34.रेमंड विलियम्स,की वर्ड्स,
नरेन्द्र वशिष्ट
34.अडोर्नो
35.चुका भी हूँ मैं नहीं,
36.मैनेजर पाण्डेय,साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका, हरियाणा साहित्य अकादमी, चण्डीगढ़, प्रथम संस्करण 1989, पृ. 222
37. केदारनाथ सिंह,आधुनिक हिन्दी कविता में बिम्ब विधान का विकास, भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली, 1971 पृ. 8
38. रामचन्द्र शुक्ल,चिन्तामणि, भाग-2, पृ. 1
39. सी.डी.लीविस,द पोयटिक इमेज,जोनाथन कैप,लंडन,1947,पेज 80
40. शमशेर, मलजय सर्वेश्वर (सं.), राधाकृष्ण प्रकाशन,दिल्ली, समर्पण संस्करण, 1971, पृ.
41.मलयज, कविता से साक्षात्कार, संभावना प्रकाशन, हापुड़, प्रथम संस्करण, 1979, पृ. 24
42.देखें,जे.कृष्णमूर्ति,टाक्स एंड डायलाग्स,सर्विरे/वासेनार,द निदरलैंड,1969.
कमेंटरिज आन लिविंग,डी.राजगोपाल (एडिटेड) विक्टर गोलांच लिमिटेड,लंडन 1961
43. "नो-नोलेज इज नोट अ प्रोजेक्सन आफ वंस इगो इंटू नेचर,इट इज नेचर्स इगो शेयर्ड बाय आल. इट इज नो-नोलेज दैट स्टायमुलेट्स द ताओइस्ट आर्टिस्ट टू पेंट अ फोरेस्ट एज इट विड अपियर टू द ट्री देमसेल्व्स. " आर.जी.एच.सिन,द ताओ आफ साइंस.चैपमैन एंड हाल लिमिटेड,लंडन,1957,पेज 76-79.
44.सर्वेश्वर मलयज (सं.) शमशेर, राधाकृष्ण प्रकाशन, समर्पण संस्करण,1979 पृ. 139
45.रेने द कोस्ता,द पोयट्री आफ पाब्लो नेरूदा,हारवर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, यू.एस.ए. सेकेण्ड प्रींटिंग 1980,पे. 2
46.रामविलास शर्मा,नयी कविता और अस्तित्ववाद,
47.थियोडोर एडोर्नो,आन लुकाच,इन एस्थेटिक्स एंड पोलिटिक्स,न्यू लेफ्ट बुक्स 1977,पेज 160
48. हर्बट मारकुस,द एस्थेटिक डायमेंशन,द मैकमिलन प्रेस लिमिटेड,यू.के.1979,पेज 4
49.वाल्टर बेन्यामिन,अंडरस्टेंडिंग ब्रेख्त,वर्सो,लंडन,1983
50.बर्टोल्ड ब्रेख्त,आन थियेटर,दि डेवलपमेंट आफ एन एस्थेटिक्स,मैथ्यून एंड कम्पनी,लंडन,1965,पेज 114

51.मार्सेल प्रूस्त,रिमेम्बरेंस आफ थिंग्स पास्ट,वोल्यूम 1,चेट्टो एंड विंडस,लंडन 1982,पेज 893-894
52. र. वि. साखलकर, आधुनिक चित्रकला का इतिहास राजस्थानी हिन्दी ग्रंथ अकादमी जयपुर, प्रथम संकरण, 1971, पृ. 59 पर उद्‌धृत।
53.इ.एम.गोम्ब्रिक,द स्टोरी आफ आर्ट,फायदान पब्लिशर्स,न्यू योर्क 1968,पेज 387 पर उद्‌धृत
54.र. वि. साखलकर, वही, पृ. 59 पर उद्‌धृत
55.शमशेर, उदिता, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, पृ. 107
56.मलयज, वही, पृ. 29
57.आर्नल्ड होजर,द सोशल हिस्ट्री आफ आर्ट,वोल्यूम फोर,वेंटेज बुक्स,न्यू योर्क, 1985,पेज 170
58.राबर्ट केन डेविस(एडि.)कंटेम्परिर लिटेररी क्रिटिसिज्म,लोंगमैन,न्यू योर्क 1986,पेज 12
59.एंथनी इस्थोप,पोयट्री एज डिस्कोर्श,मैथ्यून एंड कम्पनी,यू.एस.ए.1967,पेज 141
60.एजरा पाउंड,ए.बी.सी. आफ रीडिंग,फेबर एंड फेबर,लंडन 1973,पेज 21
61.कवि शमशेर से लेखक की ध्वन्यांकित बातचीत के आधार पर।
62.पीटर बर्गर,थियरी आफ अवाँ गार्द,मेनचेस्टर मिनेसोता प्रेस,मिनयेपोलिस यू.एस.ए.1984,पेज 86
63. कुंतक,वही
64.रशियन फोर्मलिज्म,वही